卐 ॐ श्री गोडी पार्श्वनाथाय नमः। 卐 ...

श्री हित विजय जैन ग्रन्थमाला पुष्प नं० २८

जैन और बौद्ध के दर्शन पर निबन्ध

लेखक

मेवाड़केसरी श्रीनाकोड़ातीर्थोद्धारक पूज्य जैनाचार्य—
श्रीमद् विजय हिमाचलसूरीश्वर शिष्य—
मुमुक्षु भव्यानन्द विजय 'व्याकरण साहित्य रत्न'

卐

प्रकाशक

श्री हित सत्क ज्ञान मन्दिर
मु० पो० घाणेराव (मारवाड़)

वीर स० २४८४ } मूल्य १) रुपया { हीरस्वर्ग स० ३६
विक्रम स० २०१४ } डाक खर्च अलग { ई० सन १९५७

प्राप्तिस्थान —

१ हित सत्क ज्ञान मंदिर
मु० पो० घाणेराव (मारवाड)
वाया—फालना

२.शा.लालचंद पुरुषोत्तमदास
ठि० रैया संघवी सेरी
वढवाणसिटी (सौराष्ट्र)

---

३ श्री नेमीचन्द भंडारी
C/o महावीर जनरल स्टोर,
सोजत सिटी (राजस्थान)

श्रीकृष्ण भारद्वाज के प्रबन्ध में
: जनता आर्ट प्रेस, ::
ब्यावर में मुद्रित।

मेवाड केसरी
विजय हिमाचलसूरी

प्रस्तुत निबन्ध में सहायक ग्रंथों की
—शुभ नामावली—

(१) श्री कल्प सूत्र
(२) लोक प्रकाश
(३) स्याद्वाद मंजरी
(४) श्री बृहत् संग्रहणी सूत्रम्
(५) श्री श्रीपाल रास
(६) गौतम बुद्ध
(७) भारतीय दर्शन
(८) भारत भारती
(९) जैनीज्म
(१०) हिन्दुओं के राजनैतिक [सिद्धांत
(११) जैन धर्म नो प्राचीन इतिहास
(१२) जिनवाणी
(१३) भव्य बोल समुच्चय
(१४) जगद् गुरु हीर निबन्ध
(१५) जैन तत्त्व प्रकाश
(१६) *हिन्दी कल्याण (साधनांक)*
(१७) अहिंसा वाणी (मासिक पत्रिका)

प्रस्तुत निबन्ध में द्रव्य सहायक भाइयों की
— शुभ नामावली —

४००) इस निबन्ध पर पुरस्कार द्वारा प्राप्त
३०१) श्री जैन संघ (ज्ञान खाता) — सोजतसिटी
५१) श्री मूलचन्दजी पारसमलजी रातड़िया — ”
५१) वकील श्री संपतराजजी हंसराजजी भंडारी — ”
५१) श्री ज्ञानमलजी तेजराजजी मुथा — ”
७५) श्री अनराजजी हुकमचन्दजी हिम्मतचन्दजी मंत्री — ”
७५) श्री सरदारमलजी माणेकचन्दजी माडोत — ”
२५) श्री मोतीलालजी भंवरलालजी सुराणा — ”
२५) श्री जीवराजजी धनपतराजजी भंडारी — ”
२५) श्री वरदीचंदजी मगराजजी सिमाडावाला — ”
२५) श्री जीवराजजी सूरजराजजी मुणोत — ”

— लेखकीय-निवेदन —

प्रिय पाठक वृन्द !

गत वर्ष मेरा चातुर्मास वढवाण सिटी (सौराष्ट्र) में था, उस समय बम्बई की प्रसिद्ध सस्था-ट्रस्टी शेठ शान्तिदास खेतसी चेरीटेबल ट्रस्ट की तरफ से मेसर्स दयालजी एण्ड दीपचन्द सोलीसीटर्स फोर्ट चेम्बर्स डीन लेन बम्बई ने यह घोषित किया था कि "जैन और बौद्ध के दर्शन पर निबन्ध" लिखने वालों को प्रथम पुरस्कार १५०१) पन्द्र सौ रुपयों का दिया जायगा उस समय वढवाण के कईएक भाईयों ने मुझे भी लिखने के लिये बाध्य किया मैंने भी सोचा इस दृष्टि से अनेक ग्रथों का अवलोकन होगा और बुद्धि का विकाश भी होगा। इनाम की दृष्टि से नहीं अपितु बुद्धि के विकाश की दृष्टि से लिखना प्रारभ कर दिया यद्यपि विहार के दिन निकट आ रहे थे फिर भी मैंने जल्दी जल्दी लिखकर कार्तिक शुद्ध पूर्णिमा को ही निबध की तीन प्रतियां उपरोक्त सस्था का रजिस्ट्री द्वारा भेज दी उत्तर में शेठ जीवाभाई प्रतापसी का पहुचने का पत्र भी आ गया था, उस निबध का परिणाम नियत अवधि के कई दिनों बाद ता० ७-८-४७ को बम्बई समाचार में प्रकाशित हुआ, जिसमें दूसरा पुरस्कार चार सौ रुपयों का इस निबध को दिया गया इस प्रकार इस निबन्ध का प्रादुर्भाव हुआ, और छपवाने के समय भी नाम में कोई परिवर्तन नहीं किया गया।

निबन्ध
—लेखक

मेरा जो कुछ अभ्भाम था, उसके अनुसार ही इस ग्रथ मे जो कुछ मैंने वर्णन किया य, मेरी दृष्टि से तो सिद्धान्त विरुद्ध नहीं लिखा है सभव है कुछ लिखा गया हो वह पाठक महोदय हम सूचित करन का अनुग्रह करेंगे, जिससे दूसरे सस्करण मे सशोधन कर लिया जायगा।

इस निबन्ध को प्रकाशित करने में चार सौ रुपये तो इनाम के प्राप्त हुए हैं तीन सौ जैन सघ सोजतसिटी न ज्ञान खाता में से दिये हैं, और तीन सौ रुपये अलग अलग धर्म प्रेमी भाईयों से प्राप्त हुए हैं। तदर्थ हार्दिक धन्यवाद !!!

इस निबन्ध में प्राक् कथन महाराज श्री ने तथा श्री जगदीश-सिंहजी गहलोत जोधपुर, एव सोजत के सघवी श्री अनराजजी सा० न अभिमत लिखने का जो कष्ट उठाया है तदर्थ आपका आभारी हू।

छद्मस्थ होने के नाते प्रेस दोष तथा सैद्धान्तिक गल्तिया का होना सभव है वाचक समुदाय हमें सूचित करें यही विनम्र निवेदन !!!

जैन धर्मशाला
सोजतसिटी
कार्तिक शुक्ला
दशमी,
स० २०१४

विद्वज्जनचरणोपासक
भव्यानन्द विजय

—❀विषय सूची❀—

प्राक् कथन

दर्शन अहा ! दर्शन ! तुम अमूल्य निधि हो ! हमारा प्राण हो ! हमारा जीवन हो। तुम्हारे अतिरिक्त हम कभी पनप नहीं सकते, क्योंकि हमारा भव्य भारत वर्ष अनादिकाल से दर्शन प्रधान ही रहा है प्रत्येक दर्शनों की आधार शिला केवल दर्शन ही है। वह छ प्रकार से इस रत्न प्रभा पृथ्वी पर सूर्य की भांति चमकते हैं। यथा जैन बौद्ध जैमिनी चार्वाक, वैदान्त और वैशेषिक आदि नामों से प्रसिद्ध हैं, इन्हा का तत्व स्वतन्त्र है, भिन्न भिन्न हैं परस्पर सैद्धान्तिक वादावियाद भी आश्रयान्वित है। जिससे बौद्धिक विकाश के साथ धार्मिक चुस्तता भी बढ़ जाती है क्योंकि बौद्धिक विकाश के सिवाय किसी भी तत्व को तहतक पहुच नहीं सकते, और मूल स्वरुप के जाने अतिरिक्त कयल बाबा वाक्यं सत्य मे कार्य कहा तक चल सकता है, यह तो हमारे प्रिय पाठकों पर ही छोड़ देते है। दर्शन का सरल अर्थ तो देखनामात्र ही है किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से दर्शन का नाम न्याय है और लोकोत्तर मार्ग में उसको न्याय शास्त्र पुकारते हैं न्याय की तराजू में प्रत्येक तत्वों को तोलना ही मूख्य हैं और व्रत नियम प्रत्याख्यान आदि कार्य गौण हैं, यहां प्रश्न उठता है कि खास आत्म साधन के कार्य को गौण और न्याय के मार्ग को मुख्य क्यों माना जा रहा है ? उत्तर यह हैं कि हमारे जिनागमों में ही नहीं प्रत्येक दार्शनिक ग्रंथकारों ने पहले ज्ञान पीछे क्रिया का ही सम्बन्ध रखा है यथा "पढम नाणं तओ दया,, यह आगम वाक्य है। जो जानेगा वही पालेगा जो कुछ भी नहीं जानता है वह क्या पाल सकता है, अज्ञानियों का वैराग्य तो केवल टीमटमाते शुष्क तेल दीपक वत् ही है और भी सुनिये "अभ्र च्छाया खलप्रीति पराधीनेषु यत्सुख-अज्ञानेषुचवैराग्य क्षीप्रमेव विनश्यति"।

गगन मडल में छाये हुए वादलों की छाया को वायु एक ही झोके से मिटा सकता है परतत्रता में सुखानुभव करने

वाला व्यक्ति भी "यतो भ्रष्ट ,स्ततो भ्रष्ट, हो जाता है एतादृश मूर्खों का वैराग्य भी कुछ समय में कापूर का भांति उडते ही नजर आता है अत प्रथम ज्ञान और पीछे क्रिया वाला सुन्दर आगमन वाक्य अटल है अमोघ है एव लोह लकीर वत् अमिट हैं भले ही कोई हटवादी अपनी धृष्टता म उसे खडन करन की चेष्टा करते हैं तो भले ही करे उस से होने वाला क्या है शशक शृगवत् निर्मूल है पूर्वाचार्याने इसीलिये तो दार्शनिक ग्रथ अपने अकाट्य युक्तियों से विभूषित वृहत काय वाले रचकर हमारे ऊपर महान उपकार किया है वह किसी भी क्षण भुलाया नहीं जा सकता क्योंकि उस ज्ञान के विना हम पशुवत् रह जाते हैं विद्वद् समाज में उड्डान करने की परे उन महापुरुषो के द्वारा ही हमें प्राप्त हुई है। अत उन आप्त पुरुषों के सदा ऋणि हैं । किन्तु दुःख इस बात का है कि आज के जमाने मे हमारे दार्शनिक ग्रथ केवल ज्ञानालयों की अलमारीयों में ही शृगार रूप है उसका अध्ययन और अध्यापन विरले महानुभावों को छोड कर पसद ही नहीं करते उन्हें तो पसद है नाटक नौवेल काल्पनिक कथा और चाहिये सीनेमा की तर्जे । जिसे पाकर निहाल से हो जाते हैं और सद्-धर्म से श्रद्धा विहीन होकर नास्तिकता का जामा पहन कर आर्य सस्कृति से हाथ धो रहे हैं जिसे देख कर श्रद्धा-शील व्यक्तियों को महान दुःख होता है पर करे भी तो क्या ? दर्शन शास्त्रों में प्रत्येक वस्तु को सिद्ध करने मे चार प्रमाण माने गये हैं, अनुमान प्रमाण, आगम प्रमाण, परोक्षप्रमाण, और प्रत्यक्ष प्रमाण। इन्हीं प्रमाणों के द्वारा जिज्ञासु को सरलता से समझाया जा सकता है किन्तु पाश्चात्य विद्वानों के उपासक तो केवल प्रत्यक्ष प्रमाण ही स्वीकार करते हैं ऐसी दशा में विद्वानों के द्वारा समन्वय बुद्धि से समझाया जाय तब तो ठीक है अन्यथा वे कभी भी मानने को तैयार नहीं हैं लिखने का आशय यह है

वाला व्यक्ति भी "यतो भ्रष्ट स्ततो भ्रष्ट, हो जाता है एतादृश मूर्खों का वैराग्य भी कुछ समय में कापूर की भांति उड़ते ही नजर आता है अतः प्रथम ज्ञान और पीछे क्रिया वाला सुन्दर आगमन वाक्य अटल है अमाघ है एवं लोह लकार वत् अमिट है भले ही कोई इत्यादी अपनी धृष्टता से उसे खण्डन करने की चेष्टा करते हैं तो भले ही करें उस से होने वाला क्या है शशशृंगवत् निर्मूल है पूर्वाचार्यों ने इसीलिये तो दार्शनिक ग्रंथ अपने अकाट्य युक्तियों से विभूषित वृहत काय वाले रचकर हमारे ऊपर महान उपकार किया है यह किसी भी क्षण भुलाया नहीं जा सकता क्योंकि उस ज्ञान के बिना हम पशुवत् रह जाते हैं विद्वद् समाज में उत्थान करने की परे उन महापुरुषों के द्वारा ही हमें प्राप्त हुई है। अतः उन आप्त पुरुषों के सम्ब ऋणि हैं। किन्तु दुःख इस बात का है कि आज के जमाने में हमारे दार्शनिक ग्रंथ केवल ज्ञानालयों की अलमारीयों में ही शृंगार रूप हैं उसका अध्ययन और अध्यापन विरल महानुभावों को छोड़ कर पसंद ही नहीं करते उन्हें तो पसंद है नाटक नौवेल काल्पनिक कथा और चाहिये सीनेमा की तर्जे। जिसे पाकर निहाल से हो जाते हैं और सद्-धर्म से श्रद्धा विहान होकर नास्तिकता का जामा पहन कर आर्य संस्कृति से हाथ धो रहे हैं जिस देख कर श्रद्धा-शील व्यक्तियों को महान दुःख होता है पर करे भी तो क्या? दर्शन शास्त्रों में प्रत्येक वस्तु को सिद्ध करने में चार प्रमाण माने गये हैं, अनुमान प्रमाण, आगम प्रमाण, परोक्षप्रमाण, और प्रत्यक्ष प्रमाण। इन्हीं प्रमाणों के द्वारा जिज्ञासु को सरलता से समझाया जा सकता है किन्तु पाश्चात्य विद्वानों के उपासक तो केवल प्रत्यक्ष प्रमाण ही स्वीकार करते हैं, ऐसी दशा में विद्वानों के द्वारा समन्वय बुद्धि से समझाया जाय तब तो ठीक है अन्यथा वे कभी भी मानने को तैयार नहीं हैं लिखने का आशय यह है

कि वर्तमान समय में समन्वय का एक नवीन तरीका है कि प्रत्येक दर्शनों का समन्वय करक निष्कर्ष जनता के सामने रखना और अपने सिद्धान्त का प्रचार करना ही खास मौलिकता है, इस दिशा में हर्ष है कि कुछ विद्वानों ने कदम अवश्य उठाया है और सभा सोसायटी द्वारा शुल्क अथवा नि शुल्क निबन्ध भी तैयार करवाया जा रहा है इससे दो लाभ हैं प्रथम तो लेखक को वस्तु का ज्ञान हो जाता है और दूसरा समन्वयात्मक बुद्धि का विकाश।

इसी चातुर्मास में हमारे साथी श्रद्धेय प० व्या० साहित्य रत्न मुनिश्री भव्यानन्द विजयजी ने "जैन और बौद्ध के दर्शन पर निबन्ध" नामक पुस्तक प्रकाशित की है, वह पुस्तक अवश्य समयोपयोगी है समयाभाव से मैं उसे आद्योपान्त नहीं पढ सका। किन्तु सरसरी निगाह से कुछ अश पढा है पुस्तकस्थ विषय का उत्तरदायित्व लेखक महोदय पर है मुझे तो यह प्रयास ही अति उत्तम लगा है क्योंकि हमारे आधुनिक मुनिराज जो दार्शनिक शौख बढा रहे हैं यह अत्युत्तम है इससे प्रेरित होकर मैंने भी प्राक् कथन लिख करके सधन्यवाद लेखक महाशय को इस ओर आकर्षित करता हू कि आप समय २ पर इसी विषय पर पुन पुन प्रकाश डालते रहे। जिससे जनता जनार्दन दर्शन ज्ञान सुधा का पान करके कृत कृत्य बन कर आर्य सस्कृति के रक्षण करने म कटिबद्ध रहे। यही शुभेच्छा।"

लेखक—

कोट का मोहल्ला
जैन बड़ा स्थानक
सोजत
ता० २६-१०-५७

मुनि मधुकर जैन
स्थानकवासी

मरुधर केसरी पण्डित रत्न मन्त्री
मुनि श्री मिश्रीमलजी महाराज

राजपूताने के सुप्रसिद्ध इतिहास वेत्ता श्री जगदीशसिंह जी गहलोत F. R J S क्यूरेटर

गवर्नमेंट सेन्ट्रल म्यूजियम जयपुर वर्तमान सुपरिन्टेन्डेन्ट पुरातत्व विभाग म्यूजियम जोधपुर का

—अभिमत—

श्रद्धेय पं० विद्यावाचस्पति श्रीमान् मदनानन्द त्रिपाठी म० ने एक सरल सुन्दर आध्यात्मिक रहस्यमय "जैन और बौद्ध के दर्शन पर निबन्ध" नामक निबन्ध लिखा है यह युग युगान्तर पाठक जनों को ज्ञानोन्नति का साधन प्रदान करता रहेगा।

जन्म जन्मान्तर में श्रेष्ठ योनि की प्राप्ति के लिये, और जीवन को इस संसार में सफलतया सुरम्यतया एवं सुन्दरतया निभाने के लिये प्रत्येक मनुष्य को ज्ञानोपार्जन करने की परमावश्यकता रहती है। यदि मनुष्य में ज्ञान नहीं है तो वह पशु ही है संसार में ज्ञानी पुरुष की मान्यता राजा से भी बढ़ कर होती है 'स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान् सर्वत्र पूज्यते'' इसलिये जीवन काल पर्यन्त मनुष्य को ज्ञानोपार्जन के लिये सतत अभ्यास करना चाहिये।

यद् ज्ञान से ईश्वर प्राप्ति होती है और इसी आधार पर आज विश्व में अनेक धर्म पंथ, सम्प्रदायें विद्यमान हैं, लेकिन उपनिषद् में कहा है—

> गवामनेकवर्णानां, क्षीरस्यास्त्येक वर्णता।
> क्षीर वद् पश्येत ज्ञानं, लिङ्गिनस्तु गवां यथा॥

जैसे गौऐं पृथक पृथक रंग की होती है परन्तु उन सभी का दूध एक ही रंग का अर्थात सफेद ही होता है ठीक वैसे ही मतानुयायी भी गायों की तरह अनेक प्रकार के हैं किन्तु उन सभी का ज्ञान दूध की तरह एक ही प्रकार का है।

अत सब धर्मों में ज्ञान की पराकाष्ठा प्रदर्शित की गई है मैंने तो इस पुस्तक में केवल बाह्याडम्बर को देख कर इति श्री कर ली है, परन्तु इसका पूर्णतया गूढ साहित्यकता मय रहस्य तो अध्यात्मवाद के प्रबल पिपासु ही कर सकते हैं मैं जैन साहित्य से अनभिज्ञ हूँ फिर भी पुस्तक देखने पर रहा नहीं गया, इसलिये दो शब्द लपसी में लूणवत लिख मारा है, परन्तु पाठक वृन्द को इसका अध्ययन करने से सम्पूर्णतया पता पड जायगा और लेखकजी को धन्यवाद देने में पीछे नहीं रहेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक में केवल शब्दाडम्बर को न देखकर पाठक वृन्द अपनी दृष्टि साहित्य की ओर डालें, चूंकि मुनिश्री ने कितना प्रयास कर अनेक स्वपर ग्रंथों का दोहना देकर दोनों का समन्वय किया है परन्तु मुनिश्री के प्रयास को सफल करना यह पाठक वृन्द का ही काय है। लेकिन मैं तो पं० मुनिश्री भगवान द विजयजी को साधुवाद देने में पीछे नहीं रह सकता।

कार्तिक वद १३ सं०२०१४ आपका—
सोमवार जगदीशसिंह गलहोत, जोधपुर

सोजत के विद्वान् एव प्रमुख कार्यकर्त्ता का अभिमत

भारतवर्ष शुद्ध संस्कृति और सभ्यता का सुधासागर है यहां की विचार धाराओं ने अनेक देश देशान्तरों को पावन किया है। द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव के अनुरूप इन विचार धाराओं में तारतम्यता का होना अवश्यम्भावी है। किन्तु सब का मूल उद्देश्य आत्म कल्याण करना ही रहा है। त्याग और तपस्यामय चारित्र द्वारा निर्वाण और मोक्ष प्राप्त करना यही भारतीय संस्कृति की चरम सीमा है। भौतिक ज्ञान में भी हमारी पहुंच उतनी ही उन्नत थी जितनी कि आत्म ज्ञान में, यह बताना विद्वानों का काम है। हमारा नहीं। परन्तु भौतिक विज्ञान द्वारा फलने वाले कुफलों से आज मानव समाज कितना भयभीत बन रहा है वह सब पर प्रकट है। अतएव श्री कृष्ण बुद्ध और महावीर ने जो आत्म परिशोध का मार्ग बताया है वही हितकारी प्रतीत होता है।

बुद्ध और महावीर दोनों ही २५०० वर्ष पूर्व तो इतने निकट समकालीन थे और उनके उपदेश भी इतने मिलते जुलते हैं कि कई पाश्चात्य पण्डितों ने बौद्ध और जैन धर्म को एक दूसरे की शाखा मात्र ही मान लिया था। परन्तु प्रो० हरमन जेकोबी डा० जोहन्स हर्टल आदि विद्वानों ने यह सिद्ध किया है कि बौद्ध ग्रन्थों से यह पता चलता है कि 'नातपुत्त' यानि वर्धमान महावीर कोई नये धर्म के संस्थापक नहीं थे। वरन वे बहुधा तेबीसवें तीर्थ कर श्री पार्श्वनाथ द्वारा स्थापित जैन धर्म के सुधारक ही थे। अर्थात् बौद्ध धर्म ग्रंथों में निर्ग्रन्थों (जैनों) को और नातपुत्त (महावीर) को बहुत प्राचीन होना बताया गया है। इङ्गलेण्ड में सर्व धर्म महा सभा के समक्ष बोलते हुए जैन धर्म सम्बन्धी जो उद्गार प्रो० हरमन जेकोबी ने निकाले वे इस प्रकार हैं —

"In conclusion let me assert my conviction that Jainism is an original system quite distinct and independent from all others, and that, therefore, it is of great importance for the study of philosophical thought and religious life in ancient India" अर्थात् मेरा यह निश्चित मत है कि जैन धर्म एक मौलिक और स्वतन्त्र धर्म है और प्राचीन भारतीय तत्व ज्ञान की विचार धारा और देश के धार्मिक जीवन के अध्ययन के लिये परम उपयोगी है। भारत ही की दूसरी विचार धारा बुद्धधर्म सम्बन्धी आज संसार जितना जानता है उतना भी हम नहीं जानते।

प्रस्तुत पुस्तक में इन्हीं दोनों स्वतन्त्र धर्मों के मौलिक तत्त्वज्ञान का वर्णन है, इसके विद्वान् लेखक व्याकरण-साहित्य रत्न मुनिश्री भव्यानन्द विजयजी महाराज ने इसे लिखकर समाज की बड़ी श्रेष्ठ सेवा की है।

मैंने इसे आद्योपान्त पढ़ा। पुस्तक बहुत ही विद्वत्ता पूर्ण है। जैन अजैन सब के लिये यह परम हितकारी है। मुनिराज श्री भव्यानन्द विजयजी महाराज ने जैन और बौद्ध दर्शनों के सिद्धान्तों का इसमें बड़ा ही सुन्दर और दिलचस्प खाका खींचा है। भारतीय तत्व ज्ञान की इन विचारधाराओं की समता और विषमता को आपने एक छोटे से ग्रन्थ में बड़े ही रोचक ढंग से रखा है।

जिज्ञासु पाठकों के लिये अवश्य ही यह एक सुधा सागर साबित होगा और विद्वानों के लिये तुलनात्मक दृष्टि द्वारा अध्ययन (Comparative study) के हेतु दोनों भारतीय दर्शनों के तत्त्वज्ञान का यह एक अमूल्य रत्नाकर सिद्ध होगा। आशा है पाठकवृन्द इससे यथेष्ट लाभ उठायेंगे।

सोजत,
ता० २६-१०-१९५७

सिंघवी अनराज

॥ ॐ ॥

॥ ॐ ह्रीं श्रीं श्री शखेश्वर पार्श्वनाथाय नम ॥

शासन सम्राट् जगद्गुरु श्रीमद् विजयहीर सूरीश्वरेभ्यो नमः

जैन और बौद्ध के दर्शन पर निबन्ध

❀ मंगलाचरणम् ❀

नमो अरिहंताणं । नमो सिद्धाणं । नमो आयरियाण ।
नमो उवज्झायाण । नमो लोए सव्व साहूण ।

ऐसो पच नमुक्कारो । सव्व पावप्पणासणो ।
मगलाण च सव्वेसिं । पढम हवइ मगल ॥

भवबीजाङ्कुरजनना, रागाद्याक्षयमुपागता यस्य ।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥

हिंसादिदूषण विनाश युग प्रधान,
श्रीमद् जगद् गुरु सुहीर मुनीश्वराणाम् ।
उत्पत्ति मृत्यु भव दुःख निवारणाय,
भक्त्या प्रणम्य विमलं चरण यजेऽहम् ॥

अखण्डमण्डलाकारं, व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः ॥
अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
नेत्रमुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

चौरासी लाख जीवायोनि और चार गति प्रधान यह संसार माना जाता है। चार गति म भी उत्तम मानव गति बताई है यद्यपि देव बडे अच्छे माने जाते हैं सुख माँहवा भी देव के ज्यादा हैं बडे बडे विमान में बैठ स्वेच्छा से परिभ्रमण करते रहते हैं सोने के कुण्ड मे जल क्रीड़ा दिन भर करते रहते हैं फूलों की शय्या में सदा सोते रहते, नाटक गीत गान देखने में लय लीन रहते हैं वहां न तो दिन है और न रात। केवल प्रकाशमय ही देवलोक रहता है दिन रात मास और वर्ष चन्द्र और सूर्य की गणना इस मनुष्य क्षेत्र मे

मानी गई है, इतना वैभव देव के होने पर भी मृत्यु लोक में आने के लिये बड़े उत्सुक रहते हैं और वे कहते हैं कि वे मानव धन्य हैं कि जो मानव जीवन पाकर देव गुरु और धर्म का आराधना कर अन्तिम जो ध्येय है उसको पूरा करने म जुटे हुए हैं, कारण कि देव लोक में सब कुछ होने पर भी मानवभव के बिना मोक्ष नहा मिल सकता, यद्यपि मानव की अपेक्षा देवलोक से सिद्धशिला नजदीक है फिर भी उनके लिये अगम्य और बहुत दूर है मानव क्षेत्र से सिद्धशिला बहुत दूर यानि सात राज दूर है फिर भी मानव के लिये निकट है, चूंकि मानव में वह शक्ति है कि शिवपुर सीधा जा सकता है लेकिन देव नहीं जा सकता, इतना अन्तर है।

इस तरह नारकी के जीव भी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता, इन्हें भी मृत्यु लोक में आने की इच्छा रहती है मानव भव की सामग्री प्राप्त होने पर ही मोक्ष मिल सकेगा, तिर्यंच गति म भी धर्म के साधन का अभाव है। तिर्यंच रात दिन खाता है पीता है घूमता है मगर धर्म क्या चीज है ? यह वह भी नहीं जान सकता। इसलिये ज्ञानी पुरुषों ने सब से उत्तम भव मानव, भव बताया है मानव सीधा शिवपुर पहुँच सकता है।

यहा यह एक प्रश्न उठता है कि मानव में ऐसी कौनसी शक्ति भरी पड़ी है कि जिसके द्वारा मानव मोक्ष में चला जाता है।

उत्तर तो इतना ही है कि दूसरी गति की अपेक्षा से मानव से धर्म का ठोसबन्द साधन है सब से उत्तम और सरल उपाय आत्म कल्याण के लिये धर्म ही मुख्य साधन कहा है और इस धर्म के साधन पर मानव मोक्ष पा सकता है। इसलिये मानव को सदैव धर्म पर पूर्ण श्रद्धा रख कर उसका चिन्तवन करना चाहिये।

जैन धर्म का संस्थापक—

भारतीय दर्शनों में जैन दर्शन स्वतन्त्र तथा अनादिकाल का और शाश्वत धर्म है, भगवान महावीर तो अन्तिम तीर्थकर थे और उन्होंने परम्परागत जैन धर्म का काल, द्रव्य, क्षेत्र और भाव के अनुसार प्रचार किया था किन्तु उनके पहले तेवीश तीर्थकर हो चुके थे, उनमें आदि तीर्थकर कहो या आदि राजा कहो तो ऋषभ देव भगवान माने गये हैं और वे ही जैन धर्म के संस्थापक थे किन्तु महावीर नहीं वह तो केवल प्रचारक थे।

ऋषभदेव का जन्म अयोध्या नगरी में नाभिराजा और मरु देवी के घर हुआ था उस समय युगलियों का युग था लोग नंगे रहते थे और भूख प्यास लगने पर कल्पवृक्ष के पास जा याचना करते थे और कल्पवृक्ष उन्हीं की मनो कामना पूर्ण कर देता था कल्पवृक्ष भी दश प्रकार के बताये गये हैं——

(१) गृहांगकल्पवृक्ष (२) ज्योतिषांग कल्पवृक्ष (३) भूषणांग कल्पवृक्ष (४) भोजनांग कल्पवृक्ष (५) वस्त्रांगकल्पवृक्ष (६) चित्ररसांग कल्पवृक्ष (७) तूर्यांग कल्पवृक्ष (८) भाजनांग कल्पवृक्ष (९) कुसुमांग कल्पवृक्ष (१०) दीपांग कल्पवृक्ष। इस प्रकार जो चीज चाहिये थी तब तब उन उन वृक्षों से मांगनी करते थे, और सब चीजें मिल जाती थी।

युगलियों के युग में ऋषभदेव का अवतार हुआ उस समय इन्द्र शेलडी हाथ में लेकर आया था जिससे भगवान के वंश का नाम इक्ष्वाकु पड गया भगवान के पहले हकार मकार और धिक्कार रूप नीति थी, बाद काल के चक्र से युगलियों में भी विवाद होने लगा तब नाभिराजा ने ऋषभदेव को राजा बनाया। इस अवसर्पिणी

काल के पहले राजा ऋषभदेव माने जाते हैं उन्होंने साम दान दण्ड और भेद से चार प्रकारी नीति मानव को बताई पुरुषों की बहत्तर कला और स्त्रियों की चौसठ कला का निर्माण किया । अठारह प्रकार की लिपि सिखाई । कलाओं का नाम आगे बतायेंगे ।

एक वार जगल में आग भभक उठी । इसे देख युगलिये घबराये भगवान से फरियाद की उन्होंने अवधिज्ञान के द्वारा आग पैदा हुई ऐसा जान युगलियों को अन्न पका कर खाने की शिक्षा दी फिर भी वे समझ न पाये तब हाथी के गंडस्थल पर मट्टी का भाजन कर दिया और कहा कि इसमें पानी से पका कर अन्न खाओ जिससे न तो अजीर्ण होगा और न पेट दुखेगा ।

भगवान के द्वारा दी गई शिक्षा का लाखों मानव ने लाभ उठाया श्रम खेतीवाडी करके जीवन निर्वाह मानव करने लगा अक्षरज्ञान भी ऋषभ ने करवाया शिल्प आदि चौदह विद्याएँ सिखाई इसलिये तो वे आदि ब्रह्मा भी कहे जाते हैं इतना ही क्यों ? ऋषभदेव ने मानव को भौतिक अभ्युदय के साधन भी बताये, उन्होंने आर्थिक सामाजिक और नैतिक व्यवस्था भी बताई मानव को अध्यात्म ज्ञान की शिक्षा भी दी संयम का अटूट पाठ प्रजा को पढाया ।

जैसा ऋषभ ने कहा था वैसा ही आपने जीवन में कर बताया था । राज अवस्था का परित्याग कर एक दिन स्वयं साधु ही बन गये दीक्षा लेने के बाद बारह मास पर्यन्त तो आपको आहार पानी भी नहीं मिला था फिर भी आप हताश न हुए और अपने ध्येय पर अविचल चलने लगे, हस्तिनापुर शहर में जातिस्मरण द्वारा अपने उपकारी को जान कर श्रेयांसकुमार ने इक्षुरस से बारह मास का पारणा भगवान को करवाया उस दिन से जैन समाज में वर्षीतप का प्रारंभ हुआ जो कि आज लाखों मानव इस तपश्चर्या

लाभ उठा रहे हैं और श्रेयांस कुमार के द्वारा ही संसार में दान का प्रवाह नदी वेग चालू रहा।

अनुकूल और प्रतिकूल दोनों प्रकार से अनेक उपसर्ग हुए फिर भी आप अपने मार्ग पर अडिग रहे अत्यन्त भयंकर परिषह सहन करने पर आप कोदिव्यज्ञान (केवल ज्ञान) पैदा हुआ चराचर पदार्थ को दर्पण में प्रतिबिम्ब की भांति आप जानने लगे देव देवेन्द्र नागेन्द्र नरेन्द्र चन्द्र और सूर्य सब आपकी सेवा में उपस्थित हो गये देव के द्वारा विरचित समवसरण में बैठ आप ने भवहारिणी और मंगल कारिणी देशना प्रारंभ की जिसका पान कर लाखों जीव अमर हो गये, सब प्राणी अपने जन्म सिद्ध वैर-जैर को भी भूल कर प्रेम से भगवान की परिषदा में आ बैठे और सन्मार्ग स्वीकार कर आत्म कल्याण की तरफ बढ़े।

ऋषभदेव इस प्रकार भयंकर तप त्याग के बल पर ही महान् बने थे ऋषभदेव पहले तीर्थंकर हुए और उनके द्वारा बताये गये अहिंसा प्रधान धर्म आज जैन धर्म कहलाता है इसलिये जैन धर्म के संस्थापक इस काल की अपेक्षा से ऋषभदेव माने जाते हैं, न कि भगवान महावीर। इसलिये ऋषभदेव को ही धर्म का संस्थापक समझना चाहिये। ऋषभदेव ने जितनी भी कला बताई वह राज्यावस्था में बताई है दीक्षा लेने पर नहीं।

जैनेतर साक्षी—

यदि पाठकगण यह कहेंगे कि यह तो जैनों की मान्यता है, दर असल सही है कि जैन मान्यता के अनुसार भगवान महावीर नहीं बल्कि जैन धर्म का आदि संस्थापक ऋषभदेव है किन्तु इनका समर्थन जैनेतर साहित्य और पुरातत्व से भी होता है पहले वैदिक

साहित्य को देखिये तो उसमे ऋषभदेव का वैसा ही वर्णन उपलब्ध है जैसा कि जैन आगमों मे। ऋग्वेद में लिखा है——

ऋषभं मासमानानां सपत्नानां विषासहिम्।
हन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपतिं गवाम्।

अ० ८ मं० ८ व २४

इससे स्पष्ट है कि मानव जाति के शत्रु अज्ञान के हर्ता और सभी चराचर जीवों के रक्षक गोपति ऋषभदेव थे। अथर्ववेद में भी कहा है——

अहोमुचं वृषभं यज्ञियानां विराजन्तं प्रथममध्वराणाम्।
अपां नपातमश्विनी हुवे धिय इन्द्रियेण इन्द्रियं दत्तमोज॥

१६-४२-४ (अहिंसा वाणी)

सम्पूर्ण पापों से मुक्त तथा अहिंसक वृत्तियों में प्रथम राजा आदित्य स्वरूप श्री वृषभ या ऋषभ है। यजुर्वेद (अ० ३० मं ४६) में भी ऋषभदेव का उल्लेख हुआ है इन वैदिक लेखों से स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में ऋषभ अथवा वृषभ नामक एक महापुरुष अवश्य हुआ था। किन्तु वेद मन्त्रों में उल्लिखित यह वृषभ कौन थे? वेदों से यह स्पष्ट नहीं है इस विषय में यह माना जाता है कि वैदिक अनुश्रुति की व्याख्या पुराण और इतिहास के आधार पर करना उचित है अत हिन्दु पुराणों के आधार से यह प्रमाणित होता है कि नाभिराय और मरुदेवी के पुत्र ऋषभदेव थे, भागवत पुराण में उनका विशद वर्णन मिलता है और उनको आठवां अवतार माना है देखिये उस में लिखा है—

राजा नाभि की पत्नी सुदेवी (मरुदेवी) के गर्भ से भगवान ने ऋषभदेव के रूप में जन्म लिया इस अवतार में समस्त आसक्तियों से रहित रहकर, अपनी इन्द्रियों और मन को अत्यन्त शान्त करके एव अपने स्वरूप में स्थित रह कर समदर्शी के रूप में उन्होंने मूढ़ पुरुष के वेष में (नग्न होकर) योग साधना की, इस स्थिति को महर्षि लोग परमहंस पद अथवा अवधूतचर्या कहते हैं। भा० ८-७ १०

(अहिंसावाणी)

ऋषभदेव ने ही पहले योग चर्या और आत्मवाद का उपदेश दिया था उनके पहले हुए सात अवतारों में से किसी ने भी उनके द्वारा उपदिष्ट नि श्रेयस मार्ग का उपदेश नहीं दिया था। विष्णु पुराण (श० १ पृ० ७७) मार्कण्डेय पुराण (अ० ५ पृ० १५०) अग्निपुराण (अ० १०) ब्राह्मणपुराण (अ० १४ श्लो० ५०-६१) आदि पुराण ग्रन्थों मे भी ऋषभदेव का ऐसा ही वर्णन मिलता है महाभारत के शान्ति पर्व में भी उनका उल्लेख हुआ है अतएव वैदिक मत के शास्त्रीय उल्लेखों से यह स्पष्ट है कि योगी ऋषभ अवश्य हुए थे और वह जैन तीर्थ कर से अभिन्न थे यह दोनों के समान वर्णन से स्पष्ट है। वैदिक धर्म के विद्वान् प्रो० विरुपाक्ष वाडियर, टीकाकार ज्वालाप्रसाद, डा० राधाकृष्णन इत्यादि उपरोक्त लेखकों के लेखोंमें जैन तीर्थ करों का जिक्र हुआ मानते हैं।

(अहिंसा वाणी)

बौद्धग्रन्थ—

बौद्धग्रन्थों से भी जैन धर्म का अस्तित्व भगवान महावीर से बहुत पहले का प्रमाणित होता है डा० जैकोबी ने स्पष्ट लिखा है कि बौद्धग्रन्थों में जैन धर्म का उल्लेख एक नये मत के रूप में कहीं भी नहीं मिलता, [illegible]

होता है, प्राचीन जैनों को प्राय बौद्धों ने तित्थिय (तीर्थक) कह कर पुकारा है जो सार्थक है क्योंकि जैन ही तीर्थकरों के तीर्थ को मानते हैं आजकल भगवान् महावीर का तीर्थ-चल रहा है यह प्रत्येक जैन जानता है अत वीर तीर्थ के उपासक 'तीर्थक" कहलाना ही चाहिये। म० बुद्ध ने इस प्राचीन जैन तार्थकों, के चारित्र नियमों से बहुत कुछ ग्रहण किया था।

आर्यमञ्जु श्री मूलकल्प,, धम्मपद, आर्यदेवकृत "सत्–शास्त्र, और "न्यायबिन्दु,, नामक बौद्धग्रन्थों में भी ऐसे उल्लेख मिलते हैं कि जिन में जैनो के आदि आप्तदेव ऋषभ और अन्तिम भगवान महावीर लिखे हैं। मञ्जु श्री मूलकल्प में भारतीय इतिहास का वर्णन करते हुए भारत के आदि कालीन राजाओं में दुन्वमार, कन्दर्प, और प्रजापति के पश्चात् नाभि, ऋषभ और भरत का होना लिखा है ऋषभ को सिद्ध कर्म और दृढव्रती बताया है नि सन्देह प्रथम तीर्थ कर का निर्वाण कैलाश (अष्टापद) पर हुआ था जो हिमालय का ही एक शृ ग है।

इस प्रकार बौद्ध ग्रन्थों से भी ऋषभदेव ही जैन धर्म के संस्थापक सिद्ध होते हैं भगवान महावीर तो जैन धर्म के सबसे अन्तिम प्रचारक थे। (अहिंसा वाणी)

इस तरह उपरोक्त प्रमाणों से यह निर्विवाद सिद्ध है कि भगवान ऋषभदेव जैन धर्म के सस्थापक थे और भगवान महावीर प्रचारक थे। अब यह विचार किया जाता है कि ऋषभदेव किस समय म हुए यहां पहले जैनों की काल (समय) गणना बत.ई जायगी।

जैन सिद्धान्त की काल गणना—

निर्विभाज्य असंख्य समय	का	१ निमेष
१८ निमिष	का	१ काष्टा
२ काष्टा	का	१ लव
२ लव	की	१ कला
२ कला	का	१ लेश
१५ लेश	का	१ क्षण
६ क्षण	की	१ घटिका
२ घटिका	का	१ मुहूर्त्त
३० मुहूर्त्त	का	१ दिवस
१५ दिवस	का	१ पक्ष
२ पक्ष	का	१ मास
२ मास	की	१ ऋतु
३ ऋतुकी	की	१ अयन
२ अयन	का	१ वर्ष
५ सौर वर्ष	का	१ युग
२० युग .	का	१ शतवर्ष
१० शतवर्ष	का	१ सहस्रवर्ष

१००सहस्रवर्ष	का	१ लाखवर्ष
८४ लाखवर्ष	का	१ पूर्वांग
८४ लाख पूर्वांग (७० क्रोड़ ५६ लाख क्रोड़ सर्यवर्ष का)		१ पूर्व
८४ लाख पूर्व	का	१ त्रुटितांग (प्रथम प्रभु का आयुष्य)
८४ लाख त्रुटितांग	का	१ त्रुटित
८४ लाख त्रुटित	का	१ अडडांग
८४ लाख अडडाग	का	१ अडड
८४ लाख अडड	का	१ अववाग
८४ लाख अववांग	का	१ अवव
८४ लाख अवव	का	१ हुहुकांग
८४ लाख हुहुकाग	का	१ हुहुक
८४ लाख हुहुक	का	१ उत्पलांग
८४ लाख उत्पलांग	का	१ उत्पल
८४ लाख उत्पल	का	१ पद्मांग
८४ लाख पद्मांग	का	१ पद्म
८४ लाख पद्म	का	१ नलिनांग
८४ लाख नलिनांग	का	१ नलिन
८४ लाख नलिन	का	१ अर्थनि पुरांग

जैन सिद्धान्त की काल गणना—

निर्विभाज्य असंख्य समय	का	१ निमेष
१८ निमिष	का	१ काष्ठा
२ काष्ठा	का	१ लव
२ लव	की	१ कला
२ कला	का	१ लेश
१५ लेश	का	१ क्षण
६ क्षण	की	१ घटिका
२ घटिका	का	१ मुहूर्त्त
३० मुहूर्त्त	का	१ दिवस
१५ दिवस	का	१ पक्ष
२ पक्ष	का	१ मास
२ मास	की	१ ऋतु
३ ऋतुकी	की	१ अयन
२ अयन	का	१ वर्ष
५ सौर वर्ष	का	१ युग
२० युग	का	१ शतवर्ष
१० शतवर्ष	का	१ सहस्रवर्ष

१००सहस्रवर्ष का १ लाखवर्ष

८४ लाखवर्ष का १ पूर्वांग

८४ लाख पूर्वांग (७० क्रोड ५६ लाख क्रोड सूर्यवर्ष का) १ पूर्व

८४ लाख पूर्व का १ त्रुटितांग

(प्रथम प्रभु का आयुर्ष्य)

८४ लाख त्रुटितांग का १ त्रुटित

८४ लाख त्रुटित का १ अडडांग

८४ लाख अडडांग का १ अडड

८४ लाख अडड का १ अववांग

८४ लाख अववांग का १ अवव

८४ लाख अवव का १ हुहुकांग

८४ लाख हुहुकांग का १ हुहुक

८४ लाख हुहुक का १ उत्पलांग

८४ लाख उत्पलांग का १ उत्पल

८४ लाख उत्पल का १ पद्मांग

८४ लाख पद्मांग का १ पद्म

८४ लाख पद्म का १ नलिनांग

८४ लाख नलिनांग का १ नलिन

८४ लाख नलिन का १ [illegible]

८४ लाख अर्थनिपुरांग	का	१ अर्थ निपुर
८४ लाख अर्थ निपुर	का	१ अयुतांग
८४ लाख अयुतांग	का	१ अयुत
८४ लाख अयुत	का	१ नयुतांग
८४ लाख नयुतांग	का	१ नयुत
८४ लाख नयुत	का	१ प्रयुतांग
८४ लाख प्रयुतांग	का	१ प्रयुत
८४ लाख प्रयुत	का	१ चूलिकांग
८४ लाख चूलिकांग	का	१ चूलिका
८४ लाख चूलिका	का	१ शीर्ष प्रहेलिकांग
८४ लाख शीर्ष प्रहेलिकांग	का	१ शीर्ष प्रहेलिका
		(संख्याता वर्ष)

असंख्याता वर्ष का (पल्य प्ररुपणा में) १ पल्योपम (छ, भेदे)
१० दश कोडा कोडी पल्योपम का १ सागरोपम (कुलछः भेदे)
१० दशकोडा कोडी सागरोपम की १ उत्सर्पिणी
१० दश कोडा कोडी सागरोपम की १ अवसर्पिणी

२० कोडाकोडी सागरोपम का अथवा उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी मिलने से १ कालचक्र होता है। अनंत कालचक्र से एक पुद्गल परावर्तन होता है और वह भी चार प्रकार से माना गया है।

अब जैन सिद्धान्त के अनुसार मुख्य काल के बड़े दो विभाग किया जाता है (१) अवसर्पिणी (२) उत्सर्पिणी। इनका अर्थ क्रमिक अवनति और उन्नति होता है, यानि उत्सर्पिणी बढ़ने का काल और अवसर्पिणी पतन काल। वर्तमान अवसर्पिणी काल माना जाता है।

प्रत्येक उत्सर्पिणी अथवा अवसर्पिणी में जैनों के चौवीश चौवीश तीर्थंकर होते आये हैं, एक उत्सर्पिणी अथवा अवसर्पिणी १०-१० कोड़ाकोड़ी सागरोपम की मानी गई है और प्रत्येक उत्सर्पिणी अथवा अवसर्पिणी के छः छः आरे भी नियत हैं यहां आरा के नाम व स्वरूप विचारिये।

छः आरों का नाम तथा स्वरूप

(१) वर्तमान अवसर्पिणी काल के छः आरा में से पहला आरा 'सुखमा सुखम्' नाम का चार कोड़ा कोड़ी सागरोपम की स्थिति वाला माना गया है, इस समय मनुष्य का शरीर प्रमाण तीन गाउ और आयुष्य तीन पल्योपम का होता है, और वज्र ऋषभ नाराच संहनन तथा समचतुरस्र संस्थानवाले एवं महारूपवान तथा सरल स्वभावी होते हैं, स्त्री पुरुष दोनों साथ यानि युगलिये रूप ही जन्म होता है और उनके लिये कल्पवृक्ष ही सब कुछ देता है।

(२) पहला आरा समाप्त होते ही तीन कोड़ा कोड़ी सागरोपम का "सुखमा" नामक दूसरा आरा प्रारंभ हो जाता है इस आरे में पहले से रूप रस गंध और स्पर्श में अनन्त गुणी हीनता हो जाती है शरीर का प्रमाण दो गाउ तथा आयुष्य दो पल्योपम का ही होता है।

(३) दूसरा आरा समाप्त होते ही दो कोडा कोडी सागरोपम की स्थिति वाला "सुखमा दुखम्" नाम का तीसरा आरा लग जाता है, यहां रूप रस गंध और स्पर्श आदि में अधिक न्यूनता आ जाती है, चाहे उत्सर्पिणी हो अथवा अवसर्पिणी हो मगर एक तीर्थ कर का जन्म तो तीसरे आरे में हो ही जाता है इसी प्रकार ऋषभदेव भगवान आद्य तीर्थ पति का यहा पर जन्म हो गया था और युगलियों को सर्व प्रकार की शिक्षा आप फरमाते हैं। सर्व प्रथम कुम्भकार की स्थापना की कुल १८ श्रेणी और १८ प्रश्रेणी सब मिला कर ३६ जातिया बनाई वह इस प्रकार है।

(१) कुम्भकार (२) माली (३) खेडुत (४) ततुवाय (५) दरजी (६) चित्रकार (७) चूडीगर (८) मद्य के व्यापारी (९) तम्बोली (१०) खत्री (११) सुथार (१२) गोवालिय (१३) तेलीघाची (१४) धोबी (१५) कदोई (१६) हजाम (१७) कहार (१८) बधार (१९) सीलगर (२०) सम्रही (२१) काच्छी (२२) कुदीगर (२३) कागदी (२४) रबारी (२५) ठठेरी (२६) पटेल (२७) कडिया (२८) भडभूजा (२९) सोनी (३०) गिरा (३१) चमार (३२) चूनारा (३३) माछी (३४) सिकलीघर (३५) कसारा (३६) वाणिया।

लोकोत्तर १४ विद्या—(१) गणितानुयोग (२) करणानुयोग (३) चरणानुयोग (४) द्रव्यानुयोग (५) शिक्षाकल्प (६) व्याकरण (७) छंदविद्या (८) शास्त्र (९) अलंकार (१०) ज्योतिष (११) निरुक्त (१२) इतिहास (१३) मीमांसा (१४) न्याय।

लौकिक १४ विद्या—प्रज्ञा, चातुरी, बल, वाहन, देशना बाहु, जलतरण, रसायन, गायन, वाद्य, व्याकरण, वेद, ज्योतिष और वैदिक।

लिपि के १८ नाम—१ हंस लिपि (२) भूतलिपि (३) यक्षलिपि (४) राक्षस लिपि (५) यवन लिपि (६) तुरकी लिपि (७) किरली लिपि (८) द्राविडिलिपि (९) सैंधवीलिपि (१०) मालवीलिपि (११) कनडीलिपि (१२) नागरीलिपि (१३) लाटीलिपि (१४) फारसी लिपि (१५) अनीमिसिलिपि (१६) चाणक्यी लिपि (१७) मूलदेवलिपि (१८) उड्डीलिपि।

पुरुष की ७२ कला—लेखन, गणित, रूपबदलना, नृत्य, संगीत, ताल, वांजिन्त्र, बसरी, नरलक्षण, नारीलक्षण, गजलक्षण, अश्वलक्षण, दंडलक्षण, रत्नपरीक्षा, धातुवाद मंत्रवाद कवित्व, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र, ज्योतिशास्त्र वैद्यकशास्त्र षट्भाषा, योगाभ्यास, रसायन, अंजन, स्वप्नशास्त्र, इन्द्रजाल, खेतीवाड़ीकर्म वस्त्रविधि, जुगार व्यापार, राजसेवा शकुन-विचार, वायुस्तम्भन, मेघवृष्टि, अग्निस्तम्भन, विलेपन, मर्दन, उर्ध्वगमन, सुवर्णसिद्धि, रूप सिद्धि, घटबन्धन, पत्रछेदन मर्मभेदन लोकाचार, लोकरंजन, रथयुद्ध, फल आकर्षण, अफलाफलन धारबन्धन, चित्रकला ग्रामवसाना, मल्लयुद्ध, गरुड़युद्ध दृष्टियुद्ध, वाग्युद्ध, मुष्टियुद्ध, बाहुयुद्ध, दण्डयुद्ध, शास्त्रयुद्ध, सर्पमोहन व्यंतरमर्दन, मंत्रविधि, तंत्रविधि, यन्त्रविधि, रौप्यकविधि सुवर्णपाकविधि, बन्धन, मारण, स्थंभन और संजीवन।

स्त्री की ६४ कला—नृत्य, चित्र, औचित्य वादित्र, मंत्र, जन्त्र, ज्ञान, विज्ञान, दम्भ जलस्थंभन, गीतागान, तालमान, मेघ-वृष्टि, फलाकृष्टि आकारगोपन धर्मविचार धर्मनीति, शकुनविचार क्रियाकल्प आरामरोपण, संस्कृतजल्प, प्रमादनीति सुवर्ण शुद्धि सुगंधतेल बनाना, लीलाचर्या हाथी घोड़ा की परीक्षा, स्त्री पुरुष की परीक्षा काम क्रिया, लिपिछेदन, तात्कालिक बुद्धि, वस्तुसिद्धि, वैद्यक क्रिया, सुवर्णरत्नशुद्धि, कुम्भभ्रम, सारीश्रम, अंजनयोग, चूर्ण

योग, हस्तपटुता, वचनपटुता, भोजन विधि, वाणिज्य विधि, काव्य शक्ति, व्याकरण, शालीखंडन, मुखमंडन, कथाकथन, पुष्पमाला गूथन, शृंगार सजना, सर्वभाषाज्ञान, अभिधान ज्ञान, आभरण विधि, भृत्य उपचार, गृहाचार सचयकरना, निराकरण, धान्यरधन, केशगूथन, वीणानाद, वितंडावाद, अंकविचार, सत्यसाधन, लोक व्यवहार, अन्त्यचरी, और प्रश्न पहेली।

इस प्रकार की शिक्षाएं समाज को ऋषभदेव ने दी थीं, भगवान के पुत्र चक्रवर्ती श्री भरत से हिन्दुस्तान का नाम भारत पड़ा है जो आज विश्व में सूर्य की भांति चमक रहा है तीसरे आरे का साढ़ा आठ मास और तीन वर्ष के शेष रहने पर भगवान ऋषभदेव मोक्ष में पधार गये। और चौरासी गणधर हुए हैं सब से बड़े पुंडरीक स्वामी हुए थे।

(८) तीसरे आरे की समाप्ति के बाद "दुसमा सुखम„ नामक चौथा आरा प्रारंभ होता है वह ४२००० हजार वर्ष कम एक सागरोपम की स्थितिवाला होता है तीसरे आरे की अपेक्षा इसमें रूप रस गंध और स्पर्श आदि शुभ पुद्गलों की अनन्तगुणा न्यूनता हो जाती है शरीर प्रमाण ५०० धनुष और आयुष्य एक क्रोड़ पूर्व का हो जाता है।

तीसरे तथा चौथे आरे में जैनों के २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती ९ वासुदेव, ९ प्रतिवासुदेव, ९ बलदेव, कुल ६३ उत्तम पुरुष होते हैं जिनको जैनी लोग "त्रिषष्टिशलाका पुरुष„ के नाम से सम्बोधन करते हैं व ६३ पुरुष मोक्ष के अधिकारी माने गये हैं।

(५) चौथा आरा समाप्त होते ही पांचवां आरा २१००० हजार वर्ष का लग जाता है वर्तमान के काल को "दुखमा„ नामक पांचवां आरा अथवा पंचमकाल कहते हैं, भगवान महावीर

का गणधर जम्बु स्वामी के बाद दश वस्तुओं का विच्छेद हो गया। (१) केवल ज्ञान (२) मनपर्यवज्ञान (३) परमावधिज्ञान, (४) सिद्धि-गति (५) जिनकल्पी साधु (६) उपशम श्रेणी (७) क्षपकश्रेणी (८) आहारक शरीर (६) पुलाकलब्धि (१०) तीन चारित्र (परिहारविशुद्ध, सूक्ष्मसम्पराय और यथाख्यात चारित्र) इस आरे में रूप रस गंध स्पर्श आदि में भी बहुत हीनता हो जाती है, शरीर का प्रमाण सात हाथ और आयुष्य १२५ वर्ष का होता है।

पांचवें आरे में मानव की प्रकृति इस प्रकार होगा, ३० बातों का विचार इस प्रकार रहेगा—

(१) शहर के गामड़े बन जाय (२) गामड़े के स्मशान बन जाय, (३) सुकुलोत्पन्न व्यक्ति दास दासी बन जाय (४) राजा यम-राज जैसे क्रूर बन जाय (५) कुलीन कन्या कुलटा बन जाय (६) पिता की आज्ञा पुत्र न मान (७) शिष्य गुरु की निन्दा करें (८) कुशील मनुष्य सुखी बनें (६) सुशील मानव भूखे मरें (१०) सर्प, बिच्छू, डांस, मांकड, आदि क्षुद्र जन्तुओं की उत्पत्ति विशेष हो जाय (११) दुष्काल बहुत पड़ (१२) ब्राह्मण लाभी बनें (१३) हिंसा धर्म क प्रवर्तकों की सख्या म वृद्धि होव,(१४) एक मत मे से अनेक मत मता-न्तर निकलें (१५) मिथ्यात्व की वृद्धि होवे (१६) देव दर्शन दुर्लभ हो जाय (१७) वैताढ्य पर्वत के विद्याधरों की विद्या का प्रभाव कम पड़ जाय (१८) दूध घी वगेरे सुन्दर वस्तुओं का सत्व घट जाय (१६) पशुओं का आयुष्य अल्प हो जाय (२०) पाखण्डियों की पूजा में वृद्धि हो, (२१) साधुओं के लिये चौमासा के क्षेत्र का अभाव हो जाय, (२२) साधुओं की १२ और श्रावकों की ११ प्रतिमा धारक एक भी न रहे, (२३) गुरु शिष्य को पढावे नहीं (२४) [illegible] अविनीत और कलहका[illegible] [illegible]) अधर्मी कदाग्रही धूर्त

और झगडाखोर मनुष्यों की वृद्धि हो, (२६) धर्मात्मा, सुशील, सरलस्वभावी मनुष्य कम होगा, (२७) उत्सूत्र प्ररूपक, लोगों को फमाने वाले मनुष्य धर्मीन्त कहलायेंगें (२८) आचार्यों अलग अलग सम्प्रदाय स्थापन कर परमत को उत्थापन करेंगे (२६) म्लेच्छ राजाओं की वृद्धि हो (३०) लोगों के दिल में धर्म प्रेम कम हो जाय इस प्रकार पञ्चम आरे में मानव रहेंगे जो आज अपने प्रत्यक्ष देख रहे हैं और अनुभव कर रहे हैं।

पांचवें आरे की समाप्ति के एक दिन पहले शक्रेन्द्र लोगों को कहेगा-भाईयों! कल छट्ठा आरा भयकर प्रारम्भ होगा जो भी धर्म करणी करना हो सो करलो इस प्रकार इन्द्र के वचन पर धर्मी जीव सब प्रकार की मोहजाल का परित्याग कर अनशन स्वीकार सहर्ष करेगा आत्म चिन्तवन में लीन बन ससार पार हो जायगा। पापी जीव डूब मरेगा।

उसी दिन महासवर्तक नाम का पवन चलेगा, इतना जोर से वायु चलेगा कि उस समय वैताढ्य (गिरनार), पर्वत ऋषभकूट (शत्रुञ्जय), लमणसमुद्र की खाडी, गगा और सिन्धू नदी का छोड पर्वत महल किल्ला कोट मकानों तमाम जमीनदोस्त हो जायेंगे। पहले पहर में जैन धर्म का विच्छेद होगा दूसरे पहर में ३६३ पाखण्डियों का मत खत्म होगा, तीसरे पहर में राजनीति और चौथे पहर में बादर अग्नि का सर्वथा विच्छेद हो जायगा यहा जल थल सब एक हो जायगा।

(६) पाचवा अरा की समाप्ति होने पर २१००० हजार वर्ष का दुखमा दुखम्" नाम का छट्ठा आरा लगेगा इस समय बीज की भाति कोई मानव बच गया होगा तो उनको भरत क्षेत्र का अधिष्टायक

देव वैताढ्य पर्वत से उत्तर और दक्षिण गंगा सिन्धु नदी के सामसामें तट पर बिल होगें उस में छोड देगा । वे बिल ७२ होगा और तीन तीन माल के जमान में होगा, रूप रस गन्ध स्पर्श की सर्वथा हानि हो जायगी । मनुष्य का आयुष्य २० और स्त्री का १६ वर्ष का आयुष्य, शरीर प्रमाण १ हाथ का होगा छ वर्षे स्त्री गर्भवती बनेगी, प्रसव के समय अत्यन्त वेदना का अनुभव करेगी । अत्यन्त भूख लगेगी फिर भी तृप्ति न हो सकेगी उस समय ताप भयंकर पडेगा और रात को सर्दी भी बडी भारी पडेगी । बिल से बहार निकलना भी कठिन हो जायगा । गंगा सिन्धू नदी गाडा के पैया जितनी चौडी होगी और सामान्य पानी रहेगा, इन में अनेक जलचर जीव रहेंगे सध्या के दो घडी के पहले बिलवासी जीव बहार निकल उस जीवोंको पकड पकड कर रेती पर डालेगा उन सूर्य की उष्णता से पक जाने पर बील में जा सब खायगा, मृतक मनुष्य की खोपडी मे पानी भर लाकर पीवेंगे वे लोग मासाहार कर जीवन निर्वाह करेंगे । छठे आरे के मानवी दुर्बल दीन हीन दुर्गन्ध वाले रोगिष्ट, अपवित्र नग्न आचार विचार से शून्य तथा माता, पुत्री बेन के साथ मैथुन सेवन करने वाले होंगे। पुण्य रहित और महा दुखी मानव होंगे।

इन छ आरे का सम्पूर्ण काल दश कोडाकोडी सागरोपम का है इस तरह विचार करते हुए यह तो निर्णय हो गया कि जैन धर्म अनादिकाल का और शाश्वत है। मगर इस अवसर्पिणी काल की अपेक्षा से ऋषभदेव जैन धर्म का सस्थापक है और महावीर प्रचारक है।

चौवीश तीर्थ कर और उनका अन्तर काल—

अब अपन यह विचार कर लेते हैं कि भगवान ऋषभदेव और महावीर इन दानों के बीच का काल कितना है और बीच में हुए २२ तीर्थ करों का भी विचार कर लेना चाहिये।

(१) गत चौवीशी के अन्तिम तीर्थ कर के मोक्ष जाने के बाद १८ कोडाकोडी सागरोपम के पश्चात् अयोध्या नगरी में नाभि-राजा और मरुदेवी के घर ऋषभदेव का जन्म हुआ था आप का वर्ण सुवर्ण, लछन बैल, शरीर ५०० धनुष और ८४ लाख पूर्व का आयुष्य था, ८३ लाख पूर्व घरवास और १ लाख पूर्व दीक्षा पर्याय पाल कर १० हजार साधुओं के साथ आप मोक्ष पधारे। गोमुख यक्ष और चक्रेश्वरी देवी आपके अधिष्ठायक देव माने जाते हैं।

(२) ५० लाख करोड़ सागरोपम के बाद अयोध्यानगरी में जितशत्रु राजा की पटराणी विजयादेवी की कुक्षी से दूसरे तीर्थ कर अजितनाथ का जन्म हुआ, आपका वर्ण सुवर्ण, लछन हाथी शरीर ४५० धनुष और ७२ लाख पूर्वका आयुष्य था ७१ लाख पूर्व घरवास और १ लाख पूर्व संयम पाल कर एक हजार साधुओं के साथ मोक्ष पधारें। आप के महायक्ष और अजितबाला देवी अधिष्ठायक कहे जाते हैं।

(३) ३० लाख करोड़ सागर के पश्चात श्रावस्ति नगरी में जीतारि राजा की पटराणी सेनादेवी की कुक्षी से ३ तीर्थ कर श्री संभवनाथ का जन्म हुआ था आपका वर्ण सुवर्ण, लछन घोडो, शरीर ४०० धनुष और ६० लाख पूर्व का आयुष्य था ५९ लाख पूर्व गृहवास और १ लाख पूर्व दीक्षा पर्याय पाल कर एक हजार साधुओं

से आप मोक्ष पधारे। त्रिमुखयक्ष और दुरितारिदेवी आप के अधिष्ठायक कहे जाते हैं।

(८) १० लाख करोड़ सागर के पश्चात् वनिता नगरी में सवर राजा की पटराणी सिद्धार्थदेवी की कुक्षी से चौथा तीर्थंकर श्री अभिनन्दन का जन्म हुआ था। आप का वर्ण सुवर्ण, लंछन बन्दर शरीर मान ३५० धनुष और आयुष्य ५० लाख पूर्व का था, ४६ लाख पूर्व घरवास और १ लाख पूर्व चारित्र पाल कर एक हजार साधुओं के साथ निर्वाण पद प्राप्त किया। ईश्वरयक्ष और कालीदेवी आपके अधिष्ठायक माने जाते हैं।

(५) ६ लाख करोड़ सागर के बाद काचनपुर नगर में मेघरथ राजा की राणी सुमंगला देवी की कुक्षि से पाचवां तीर्थंकर श्री सुमतिनाथ का जन्म हुआ था, आपका वर्ण सुवर्ण, लछन क्रौंचपक्षी, देह मान ३०० धनुष और ४० लाख पूर्व का आयुष्य था ३६ लाख पूर्व घरवास और एक लाख पूर्व सयम पाल कर एक हजार साधुओं के साथ सिद्धि पद प्राप्त किया। तु बरुयक्ष और महाकाली देवी आप के अधिष्ठायक देव कहे जाते हैं।

(६) ६० हजार करोड़ सागर के पश्चात् कौशाम्बी नगरी में श्रीधर राजा की सुसीमा नाम की पटराणी की कुक्षी से छट्ठे तीर्थंकर श्री पद्मप्रभु का जन्म हुआ था, आपका वर्ण लाल, लछन पद्मकमल, देहमान २५० धनुष, और ३० लाख पूर्व का आयुष्य था २६ लाख पूर्व घरवास और १ लाख पूर्व दीक्षा पर्याय पाल कर एक हजार साधुओं के साथ शिववधू को वरली। कुसुमयक्ष और अच्युतादेवी आपके अधिष्ठायक माने जाते हैं।

(७) ६ हजार करोड़ सागर के बाद वाणारसी नगरी में श्री प्रतिष्ठित राजा की पृथ्वी राणी की कुक्षी से सातवें तीर्थंकर श्री

चौवीश तीर्थकर और उनका अन्तर काल—

अब अपन यह विचार कर लेते हैं कि भगवान ऋषभदेव और महावीर इन दोनों के बीच का काल कितना है और बीच में हुए २२ तीर्थकरों का भी विचार कर लेना चाहिये।

(१) गत चौबीशी के अन्तिम तीर्थकर के मोक्ष जाने के बाद १८ कोड़ाकोड़ा सागरोपम के पश्चात् अयोध्या नगरी में नाभि राजा और मरुदेवी के घर ऋषभदेव का जन्म हुआ था आप का वर्ण सुवर्ण, लक्षन बैल, शरीर ५०० धनुष और ८४ लाख पूर्व का आयुष्य था, ८३ लाख पूर्व घरवास और १ लाख पूर्व दीक्षा पर्याय पाल कर १० हजार साधुओं के साथ आप मोक्ष पधारे। गोमुख यक्ष और चक्रेश्वरी देवी आपके अधिष्ठायक देव माने जाते हैं।

(२) ५० लाख करोड़ सागरोपम के बाद अयोध्यानगरी में जितशत्रु राजा की पटराणी विजयादेवी की कुक्षी से दूसरे तीर्थकर अजितनाथ का जन्म हुआ, आपका वर्ण सुवर्ण, लक्षन हाथी शरीर ४५० धनुष और ७२ लाख पूर्वका आयुष्य था ७१ लाख पूर्व घरवास और १ लाख पूर्व संयम पाल कर एक हजार साधुओं के साथ मोक्ष पधारे। आप के महायक्ष और अजितबाला देवी अधिष्ठायक कहे जाते हैं।

(३) ३० लाख करोड़ सागर के पश्चात श्रावस्ति नगरी में जीतारि राजा की पटराणी सेनादेवी की कुक्षी से ३ तीर्थकर श्री समवनाथ का जन्म हुआ था आपका वर्ण सुवर्ण, लक्षन घोड़ो, शरीर ४०० धनुष और ६० लाख पूर्व का आयुष्य था ५९ लाख पूर्व गृहवास और १ लाख पूर्व दीक्षा पर्याय पाल कर एक हजार साधुओं

सुपार्श्वनाथ का जन्म हुआ था आपका वर्ण सुवर्ण, लछन स्वस्तिक देहमान २०० धनुष, और आयुष्य २० लाख पूर्व का था १६ लाख पूर्व घरवास और १ लाख पूर्व साधु जीवन पाल कर एक हजार साधुओं के साथ आप मोक्ष पधारे। मातंगयक्ष और शान्तादेवी आपके अधिष्ठायक देव हैं।

(८) ६०० करोड सागर के बाद चन्द्रपुरी नगरी में महासेन राजा की लक्ष्मणा राणी की कुक्षी से आठवें तीर्थकर श्री चन्द्रप्रभु का जन्म हुआ था आपका वर्ण सफेद, लछन चन्द्र, देहमान १५० धनुष और १० लाख पूर्व का आयुष्य था उसमे ६ लाख पूर्व घरवास और १ लाख पूर्व सयम पालकर एक हजार साधुओं के साथ आप मोक्ष पधारे। विजययक्ष और ज्वाला (भ्रकुटी) देवी आप के अधिष्ठायक हैं।

(६) ६० करोड सागर के बाद काकन्दी नगरी में सुग्रीव राजा की रामा राणी की कुक्षी से नौवा तीर्थकर श्री सुविधिनाथ का जन्म हुआ था आपका वर्ण सफेद, मगरमच्छ लछन, शरीरमान १०० धनुष और २ लाख पूर्व का आयुष्य था, उसमें एक लाख पूर्व घरवास और एक लाख पूर्व चारित्र पर्याय पाल कर एक हजार साधुओं के साथ आप शिवपुर पधारे। अजितयक्ष और सुतारा देवी आपके अधिष्ठायक कहे जाते हैं।

(१०) ६ करोड़ सागर के बाद भद्दिलपुर नगरी में दृढरथ राजा की नदाराणी की कुक्षी से दशवां तीर्थ कर श्री शीतलनाथ का जन्म हुआ था, आपका वर्ण सुवर्ण, लंछन श्रीवत्स, देहमान ६० धनुष, और १ लाख पूर्व का आयुष्य था, उस में पूणी लाख पूर्व घरवास और पाव लक्षपूर्व दीक्षा पर्याय पाल कर एक हजार साधुओं

के साथ मोक्ष पधारे। ब्रह्मयक्ष और अशोकादेवी अधिष्ठायक कहे जाते हैं।

(११) एक करोड सागर में १ अबज ६६ लाख २६ हजार वर्ष कम था तब सिंहपुरी में विष्णुराजा की विष्णुराणी की कुक्षी से ११ वा तीर्थंकर श्री श्रेयांसनाथ का जन्म हुआ था, आपका वर्ण सुवर्ण लछन गेंडो देहमान ८० धनुष, और ८४ लाख वर्ष का आयुष्य था, उसमें ६३ लाख घरवास और २१ लाख वर्ष सयम पाल कर एक हजार साधुओं के साथ आप मोक्ष पधारे। ईश्वर यक्ष और मानवी (श्रीवत्सा) देवी आपके अधिष्ठायक देव हैं।

(१२) ५४ सागर के बाद चम्पापुरी में वसुपूज्य राजा की जयाराणी की कुक्षी से बारहवें तीर्थंकर श्री वासुपूज्य का जन्म हुआ था, आपका वर्ण लाल, लछन भैंसा देहमान ७० धनुष और ७२ लाख वर्ष का आयुष्य था, उस में १८ लाख वर्ष घरवास और ५४ लाख वर्ष सयम पाल कर छ सौ साधुओं के साथ मोक्ष पधारे। कुमारयक्ष और प्रचडा (प्रवरा) देवी आपके अधिष्ठायक हैं।

(१३) ३० सागर के बाद कपिलपुर नगर में कृतवर्मा राजा की राणी श्यामा की कुक्षी से तेरहवा तीर्थंकर श्री विमलनाथ का जन्म हुआ था आपका वर्ण सुवर्ण, लछन वराह (सूअर। देहमान ६० धनुष और ६० लाख वर्ष का आयुष्य था उसमें ४५ लाख वर्ष घर-वास और १५ लाख वर्ष सयम पाल करके छ सौ साधुओं के साथ आप मोक्ष पधारे। षणमुखयक्ष और विदिता देवी आपके अधिष्ठायक हैं।

(१४) ९ सागर के बाद अयोध्या नगरी में सिंहसेन राजा की महाराणी सुयशा की कुक्षी से चौदहवा तीर्थंकर श्री अनन्तनाथ का

जन्म हुआ था, आपका शरीर सुवर्ण वर्ण, सिंचाना बाज लक्षन, देह मान ५० धनुष, और ३० लाख वर्ष का आयुष्य था, २२॥ लाख वर्ष घरवास और ७॥ लाख वर्ष का सयम पाल ७०० साधुओं सहित मोक्ष पधारे। पातालयक्ष और अंकुशादेवी आपके अधिष्ठायक देव हैं।

(१५) ४ सागर के बाद रत्नपुरी में भानुराजा की सुव्रता राणी की कुक्षी से पंद्रहवा तीर्थंकर श्री धर्मनाथ का जन्म हुआ था आपकावर्ण सुवर्ण, लक्षन वज्र, देहमान ४५ धनुष और १० लाख वर्ष का आयुष्य था, ६ लाख वर्ष घरवास और १ लाख वर्ष दीक्षा पाल कर ८०० साधुओं सहित आप मोक्ष पधारे। आपके किन्नरयक्ष और कन्दर्पा (पन्नगा) देवी अधिष्ठायक हैं।

(१६) ३ सागर म पूणे पल्य कम था तब हस्तिनापुर में विश्वसेन राजा की अचिरा राणी की कुक्षी से सोलहवा तीर्थंकर श्री शान्तिनाथ का जन्म हुआ था आपका वर्ण सुवर्ण, लंछन मृग देहमान ४० धनुष और १ लाख वर्ष का आयुष्य था, ७५ हजार वर्ष घरवास २५ हजार वर्ष दीक्षा पर्याय पाल कर ६०० साधुओं के साथ आप मोक्ष पधारे। गरुडयक्ष और निर्वाणी देवी आपके अधिष्ठायक हैं।

(१७) अर्धा पल्योपम के बाद गजपुर नगर में सुर राजा की श्री देवी राणी की कुक्षी से सत्तरहवां तीर्थंकर श्री कुंथु नाथ का जन्म हुआ था आपका वर्ण सुवर्ण, लक्षन बकरा देहमान ३५ धनुष और ६५ हजार वर्ष का आयुष्य था ७१। हजार वर्ष घरवास और २३॥ हजार वर्ष सयमपाल एक हजार साधुओं से आप शिवपुर पधारे। गधर्वयक्ष और बलादेवा आपके अधिष्ठायक माने जाते हैं।

(१८) पा पल्योपम में एक करोड़ एक हजार वर्ष कम था तब हस्तिनापुर में सुदर्शन राजा की देवीराणी की कुक्षी से अठारहवें श्री अरनाथ भगवान का जन्म हुआ था शरीर का वर्ण सुवर्ण, लंछन नंद्यावर्त देहमान ३० धनुष, और आयुष्य ८४ हजार वर्ष का था उसमें ६३ हजार घरवास और २१ हजार वर्ष संयम यात्रा में निकाल एक हजार साधुओं सहित शिवपुर पधारे। यक्षेन्द्रयक्ष और धारणिदेवी अधिष्ठायक आपके हैं।

(१९) एक करोड़ एक हजार वर्ष के बाद मिथिलानगरी में कुंभराजा की प्रभावती राणी की कुक्षी से उन्नीशवां तीर्थंकर मल्लिनाथ का जन्म हुआ था, आपका वर्ण लीला, लंछन कलश, देहमान २५ धनुष और आयुष्य ५५ हजार वर्ष का था, उसमें १०० वर्ष घरवास और ५४९०० वर्ष संयम पाल, ५०० साधुओं ५०० साध्वीयों सहित आप मोक्ष पधारें। कुबेरयक्ष, और वैरुट्यादेवी आपके अधिष्ठायक हैं।

(२०) ५४ लाख वर्ष के बाद राजगृही नगरी में सुमित्र राजा की पद्मावती राणी की कुक्षी से वीसवां तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रत का जन्म हुआ था आप का वर्ण श्याम लंछन कच्छप, देहमान २० धनुष और ३० हजार वर्ष का आयुष्य था उसमें २२॥ हजार वर्ष घरवास और ७॥ हजार वर्ष चारित्र पाल एक हजार साधुओं के साथ आप मोक्ष पधारें। वरुणयक्ष और नरदत्तादेवी आप के अधिष्ठायक हैं।

(२१) ६ लाख वर्ष के बाद मथुरा नगरी में विजयराजा की विप्रादेवी की कुक्षी से एक्कीशवा तीर्थंकर श्री नमिनाथ का जन्म हुआ था आप का वर्ण सुवर्ण लंछन नीलोत्पल कमल देहमान १५ धनुष और १० हजार वर्ष का आयुष्य था ९ हजार वर्ष घरवास और १ हजार वर्ष संयम पाल एक हजार साधुओं के साथ आप

मोक्ष पधारे। भ्रकुटीयक्ष और गांधारी देवी आपके अधिष्ठायक देवता हैं।

(२२) पांच लाख वर्ष के बाद शौरिपुर नगर में समुद्रविजय की शिवाराणी की कुक्षी से बावीसवा तीर्थंकर श्री अरिष्टनेमिनाथ का जन्म हुआ था आप का वर्ण श्याम शख लक्षन, देहमान १० धनुष और एक हजार वर्ष का आयुष्य था तीन सौ वर्ष घरवास और ७०० वर्ष सयम पाल ५३६ साधुओं से शिवपुर पधारे। गोमेधयक्ष और अम्बिका देवी आपके अधिष्ठायक देवता हैं।

(२३) ८४ हजार वर्ष के बाद बाणारसी नगरी में अश्वसेन राजा की वामाराणी की कुक्षी से तेवीसवां तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ का जन्म हुआ था आपका वर्ण नीला, सर्प लछन, देहमान ६ हाथ और १०० वर्ष का आयुष्य था ३० वर्ष घरवास और ७० वर्ष चारित्र पाल ३३ साधुओं के साथ आप मोक्ष पधारे। पार्श्वयक्ष और पद्मावती देवी आपके अधिष्ठायक हैं।

(२४) २५० वर्ष के बाद क्षत्रिय कुंड नगर में सिद्धार्थ राजा की त्रिशला राणी की कुक्षी से चौबीसवा तीर्थंकर श्री महावीर का जन्म हुआ था आप का वर्ण सुवर्ण, सिंह लछन, देहमान ७ सात हाथ और ७२ वर्ष का आयुष्य था ३० वर्ष घरवास और ४२ वर्ष सयम पाल एकाकी चौथे आरे के ३ वर्ष ८॥ मास शेष रहने पर आप मोक्ष पधारे। मातंगयक्ष और सिद्धायिकादेवी आप के अधिष्ठायक देवता हैं।

इस प्रकार का अन्तर इस वर्तमान अवसर्पिणी काल के चौवीश तीर्थंकरों का है, प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में चौवीश तीर्थंकरों का होना नियत है, और आगामी चौवीशी में उपरोक्त बताया हुआ अन्तर उल्टा चलेगा।

अंतिम प्रचारक भगवान महावीर

आज से २५०० वर्ष पूर्व आपका जन्म क्षत्रियकुण्ड नगर में राजा सिद्धार्थ और त्रिशला राणी के घर हुआ था जन्मोत्सव शक्रेन्द्र ने मेरुपर्वत पर मनाया था, माता पिता के द्वारा दिया हुआ नाम वर्धमान कुमार था देवता के द्वारा दिया हुआ नाम महावीर था, और त्यागी अवस्था का नाम है-श्रमण भगवान महावीर।

जिस तरह ऋषभदेव ने जो मार्ग बताया था उन्हीं का द्रव्य क्षेत्र काल और भाव के साथ परिवर्तन कर जगत को सदुप-देश भगवान महावीर ने दिया था आज जैन संसार में भगवान महावीर का ही शासन चलता है आज प्रत्येक जैन उनकी आज्ञा के अनुसार चलना अपना धर्म समझता है।

आपने भी ३० वर्ष की प्रौढ जवानी में संसार को छोड़ त्याग मार्ग स्वीकार किया था। बारह वर्ष पर्यन्त उग्रतपस्या तपते हुए अनेक उपसर्गों का सामना किया, संगम देवता के द्वारा किये गये एक रात में २० उपसर्ग, कटपुतली के द्वारा शीत काल में ताड़ने का उपसर्ग, गोपालक के द्वारा पैरों पर खीर पकाने का उपसर्ग, कानों में खीले गाढने का उपसर्ग, और चण्डकोशिक के द्वारा काटने का उपसर्ग, इत्यादि अनेक प्रकार के भयंकर उपसर्गों को शान्ति से सहन किये और एक दिन आप केवली बने।

देव निर्मित समवसरण में बैठ देशना देने लगे लाखों प्राणी देशना सुधा का पान कर अमर बन गये। चउदह विद्या विशारद श्री इन्द्र भूति वगैरे ग्यारह पण्डित अपने अपने शिष्यों के साथ यज्ञ कर रहे थे भगवान का आगमन सुन धुआं फुआं हो गये। आखिर भगवान के द्वारा अपना संशय दूर किया गया और वे ४४०० सौ

ब्राह्मणों ने एक साथ भगवान के पास दीक्षा ली। मुख्य ११ को गणधर की पदवी दी उनका नाम इस प्रकार कहा है (१) गौतम इन्द्रभूति (२) अग्निभूति (३) वायुभूति (४) अकम्पित (५) आर्यव्यक्त (६) आर्य सुधर्मा (७) मण्डितपुत्र (८) मौर्यपुत्र (९) अचलभ्राता (१०) मेतार्य (११) और प्रभास।

इन ११ ब्राह्मणों को गणधर की पदवी देकर त्रिपदी का पाठ पढाया था, भगवान आर्य तथा अनार्य सभी प्रदेशों में घूमे थे, मानव को मानवता का पाठ पढाया "जीओ और जीनेदो", का सबक सिखाया उस समय वैदिक मान्यता के अनुसार यज्ञ का बहुत प्रचार था यहां तक कि मानव का होम भी कर देते थे और, यज्ञ करने पर मानव देवलोक और मोक्ष का सुख पाता है, ऐसी उनकी मान्यता थी मगर भगवान ने इनके विरुद्ध घोषणा की और सारे ससार में अहिंसा का जोरदार प्रचार किया था, अंतिम पावापुरी में आप मोक्ष पधारे धन्य है भगवान महावीर को कि 'जगत में अहिंसा की भागीरथी बहा दी और मानव को दुर्गति से बचाया।'

जैन शास्त्र और उनकी उत्पत्ति

ऊपर बताये अनुसार महावीर ने अपने गणधरों को त्रिपदी सिखाई " उपगमेई वा (उत्पन्न होना) विगमेई वा (विनाश होना) धुवेई वा (स्थिर रहना) इन त्रिपदी के ऊपर गणधरों ने भगवान की वाणी को गूथन की जिनको जैन आगम कहा जाता है।

ऐसे तो ऋषभदेव के समय से जैनशास्त्र सत्ता पर आये, पर महावीर पर्यन्त पुस्तकारूढ न थे सब शिष्य प्रशिष्यादि को कंठस्थ ही रहते थे, कालबल से बुद्धि की मंदता होने लगी।

– वर्तमान कालीन ४५ आगम–११ अंग –

(१) आचारांग (आयरांग) इसमें साधुओं का जीवन वर्णन किया है।

(२) सूत्रकृताङ्ग (सुयगडांग) इसमें साधुओं का आचार तथा परमत का खंडन किया गया है।

(३) स्थानाङ्ग (ठाणाङ्ग) इस में जैन धर्म के मुख्य तत्वों की यादी और विशेष व्याख्या की गई है।

(४) समवायाङ्ग (समवायांग) ऊपर की भांति तत्त्व चर्चा है।

(५) विवाहप्रज्ञप्ति (वियाहपन्नत्ति) इसको भगवती भी कहते हैं इसमें सब विषय का ज्ञान, तथा ३६ हजार प्रश्नोत्तर सवादरूप है।

(६) ज्ञाता धर्मकथाङ्ग (नाया धम्मकहाओ) इसमें कथा तथा उपमा के द्वारा धर्म का उपदेश दिया गया है।

(७) उपासक दशाङ्ग (उवासगदसाओ) इसमें भगवान महावीर के अनन्यभक्त दश पुरुषों का जीवन चरित्र है।

(८) अंतकृतदशाङ्ग (अंतगडदसाओं) इसमें आठ कर्मों को क्षय करनेवाले पवित्र साधुओं की कथाएं हैं।

(९) अनुत्तरोपपातिकदशाङ्ग (अनुत्तरोववाईयदसाओ) इसमें सर्वोच्च पवित्र आचार्य भगवतों की कथा है जोकि स्वर्ग में पधारे हैं।

(१०) प्रश्नव्याकरणांग (पण्हावागरणं) इसमें धर्म की विधि निषेध का वर्णन किया गया है।

(११) विपाकसूत्रांग (विवागसूयं) इसमें सुख दुःख कर्म अनित्य है, सुख वर्णन किया है, तथा अनेक कथाएं दी गई हैं।

१२ उपांग—

(१) औपपातिक (ओववाईय) महावीर भगवान के दर्शनार्थ राजा कौणिक गया था, इसका विस्तृत वर्णन तथा देवलोक कैसे प्राप्त हो, उसका वर्णन है।

(२) राजप्रश्नीय (रायपसेणइज्ज) पार्श्वनाथ भगवान का संतानीय केशीगणधर ने राजा प्रदेशी को जैन धर्मी बनाया था और वह मर कर सूर्याभदेव बनता है और भगवान महावीर का बहुत सत्कार सूर्याभदेव ने किया था इसका विस्तृत वर्णन इसमें दिया गया है।

(३) जीवाभिगम इसमें सारे ससार का तथा समस्त जीवों का सूक्ष्म दृष्टि से खूब विचार किया गया है।

(४) प्रज्ञापना (पन्नवणा) इसमें जीव का रूप गुण सम्बन्धी वर्णन है।

(५) सूर्यप्रज्ञप्ति (सूरियपन्नत्ति) सूर्य तथा ग्रह नक्षत्र का वर्णन इसमें है।

(६) चन्द्रप्रज्ञप्ति (चन्दपन्नत्ति) चन्द्र तथा नक्षत्र मंडल का वर्णन है।

(७) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति (जम्बूद्वीवपन्नत्ति) इसमें जम्बू द्वीप तथा प्राचीन राजाओं का वर्णन है।

(८) निरयावली—दश कुमारों ने अपनी विमाता के पुत्र कौणिक के साथ मिल कर अपने दादा वैशाली के राजा चेटक के साथ युद्ध शुरु किया जिसका वर्णन इसमें है। युद्धमें मारे गये कुमारों का नरक में जन्म हुआ।

(६) कल्पावतमिका (कप्पवडमियाओ) इसमें राजकुमार साधु बने और स्वर्ग में गये, इन्हीं की कथाओं का समावेश है।

(१०) पुष्पिका (पुप्फियाओ भगवान महावीर की देवताओं ने पूजा का उनके पूर्व भव सम्बन्धी विवेचन किया गया है।

(११) पुष्पचूलिका (पुप्फचूलियाओ) इसमें ऊपर के जैसा ही वर्णन है।

(१२) वृष्णिदशा (वन्हिदसाओ) श्री अरिष्टनेमि भगवान ने वृष्णिवंश के दश राजाओं को जैनधर्मी बनाया उनका जीवन इसमें लिखा है।

१० पयन्ना—

(१) चतुशरण (चउसरण) इसमें प्रार्थना और प्रायश्चित वर्णित है।

(२) आतुर प्रत्याख्यान (आउरपच्चक्खान) इसमें ज्ञानी भगवन्तों के अंत समय के प्रयत्नों का वर्णन किया गया है।

(३) भक्तपरिज्ञा (भत्तपरिण्णा) उपरोक्त वर्णन की विधी बताई है।

(४) संस्तारक (संथारग) इसमें निर्वाण के समय ज्ञानी भगवंतों कुश के आसन पर सोये अथवा बैठे इसका वर्णन किया है।

(५) तंदुलवैतालिक (तंदुलवेयालिय) इसमें शरीर विद्या, गर्भविद्या वगैरह का वर्णन दिया गया है।

(६) चन्द्राविजय (चन्दाविज्झ) इसमें गुरु शिष्य के गुण वर्णित है।

(७) देवेन्द्रस्तव (देविन्दत्थव) स्वर्ग के राजाओं की गणना की गई है।

(८) गणिविद्या (गणिविज्जा) इसमें ज्योतिष सम्बन्धी चर्चा भरी है।

(९) महाप्रत्याख्यान (महापच्चक्खान) इसमें प्रायश्चित का स्वरूप है।

(१०) वीरस्तव (वीरत्थव) इसमें महावीर सम्बन्धी वर्णन है।

छ छेद सूत्रो

(१) निशीथ (निसोह) साधुओं का धर्म, दोष तथा प्रायश्चित का इसमें विस्तार से वर्णन किया है।

(२) महानिशीथ (महानिसीह) पाप तथा प्रायश्चित की रूपरेखा इसमें है।

(३) व्यवहार (ववहार) इसमें शासन की विधि बताई गई है।

(४) आचारदशा (आयारदसाओ) इस में आचार की विधि बताई है इस ग्रन्थ का ८ वा अध्याय भद्रबाहु का बनाया हुआ है।(कल्प सूत्र) उसमें तीर्थंकर चरित्र, साधु आचार, नियम तथा सम्प्रदाय सम्बन्धी वर्णन किया गया है।

(५) बृहत्कल्पसूत्र—साधु साध्वीजी के अनुष्ठान मार्ग इसमें है।

(६) पंचकल्प (पंचकप्प) इसमें भी उपरोक्त बताये अनुसार ही है। (कितने ही, जितकल्प को छट्ठा छेद सूत्र कहते हैं)

२ सूत्रो-(१) नंदीसूत्र इसमें पांच प्रकार के ज्ञान का वर्णन

है। (७) अनुयोगद्वार (अनुओगदार) इस में विद्या मर्त्सर का विस्तार से वर्णन किया गया है।

४ मूल सूत्रो—

(१) उत्तराध्ययन (उत्तरज्झयन) इसमें सिद्धान्तों के ऊपर कथाओं, दृष्टान्तों, और सवालों का संग्रह किया गया है।

(२) आवश्यक (आवस्सय) इसमें दिन चर्या की आवश्यक विधि दी है और विविध विषयों की इसमें चर्चा की गई है।

(३) दशवैकालिक (दसवेयालिय) साधु जीवन के नियम वर्णित है।

(४) पिंडनिर्युक्ति (पिंडनिज्जुत्ति) इसमें साधुओं को दान लेने की विधि बताई है कितने ही इसके बदले (ओघनिर्युक्ति) भी कहते हैं।

उपरोक्त ४५ आगम श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के मान्य है और इन्हीं आगमों पर जैन शासन चल रहा है। स्थानकवासी और तेरापथी केवल ३२ सूत्रो को ही प्रमाण भूत मानते हैं। १० पयन्नों, दूसरा और छट्ठा छेद सूत्र तथा पिंडनिर्युक्ति इन १३ आगमों को नहीं मानते हैं, उपरोक्त दोनों सम्प्रदाय मूर्तिपूजा के विरोधी माने गये हैं।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन की मान्यता के अनुसार ४५ आगम अलग अलग व्यक्तियों के द्वारा रचा गया है जैसे भगवान की वाणी के अनुसार सुधर्मा स्वामी और जम्बू स्वामी ने अंग और उपांग तथा अन्य ग्रंथो की रचना की है। और कितने ही आचार्य भगवंतों ने लिपिबद्ध किया है। चौथा उपॉग

चार्य ने रचा है ऐसा इतिहास बताता है और आर्यश्याम का दूसरा नाम कालकाचार्य कहते हैं, ऐसे कालकाचार्य तीन हुए (१) जे गर्दभिल्ल राजा से अपनी बहन सरस्वती को शाही राजाओं की मदद द्वारा छोड़ा लाये थे (२) इन्द्र को निगोद का स्वरूप बताया था (३) पांचम की चौथ संवत्सरी करने वाले। यहां यह कौन आचार्य थे यह निर्णय नहीं हुआ है।

इसी तरह नन्दीसूत्र ई० स० ५ के समय में देवर्द्धि क्षमा श्रमण महाराज ने वल्लभीपुर में बनाया है। अनुयोग द्वारसूत्र आर्य रक्षित ने ई० स० १ में बनाया है। वीरभद्र ने चतुःशरण, शय्यंभवसूरि ने दशवैकालिक बनाया है ऐसा इतिहास कहता है कि शय्यंभव ने दीक्षा ली तो तब उनकी पत्नी सगर्भा थीं बाद पुत्र का जन्म हुआ किसी मनुष्य ने टोना मार दिया कि तू तो न बाप का है हठावश वह माता से पिता का पता लगा कर उनके पास पहुँचा, पिता ने कुछ मास का आयुष्य शेष जान दीक्षित कर लिया और उसके लिये दशवैकालिक सूत्र रचा।

चौथा छेदसूत्र तथा दूसरे छेदसूत्र श्री हरिभद्रसूरि ने ई० सं० ३०० में रचा है ऐसा मालूम होता है और महानिशीथ भी हरिभद्र सूरिने, प्रकार , अलग व्यक्तियों द्वारा,

दूसरे

आगम प्रसिद्धि में आये। ई० सं० २ सैका के जैन शिलालेख आज भी उपलब्ध हैं। इससे यह भी सिद्ध होता है कि जैन लेखन कला में भी आगे बढ़े हुए थे जो आज भी हस्तलिखित स्वर्णाक्षरों से लिखे हुए ग्रंथ मिलते हैं और वे भी बढ़िया कागज ऊपर अथवा ताड़पत्रों पर जैनों की यह अमूल्य नीधि हैं, पहले के जमाने में टेलीफोन तार तथा प्रेस का साधन नहीं था इसलिये लिपि प्रतिलिपि के द्वारा ही काम चलता था। टपाल के लिये खेपिये का उपयोग किया जाता था, यह सम्भवित बात है कि उस वक्त जैन साहित्य इतनी प्रसिद्धि में न आया हो जितना कि आज प्रसिद्ध है।

महावीर क गणधरों द्वारा विरचित ग्रंथ मागधी भाषा के थे इनका अर्थ स्पष्ट करने के लिये कितने ही विद्वान आचार्यों न संस्कृत टीका लिख अर्थ सरल कर दिया है अनेक लेखकों में से सबसे प्राचीन भद्रबाहु स्वामी का नाम आता है। जिन्हें श्वेताम्बर तथा दिगम्बर दोनों श्रद्धापूर्वक मानते हैं और छठा श्रुतकेवली भी कहे जाते हैं। ई० सं० ३०० के लगभग आप विद्यमान थे और साधुसंघ मैसूर की तरफ गया था तब आप मुख्य थे।

श्वेताम्बर आपको वृद्धावस्था में नैपाल गये थे ऐसा मानता है और दिगंबर कहता है कि अपने शिष्य महाराज चन्द्रगुप्त के साथ श्रवण-वेलगोल गये थे। जो कुछ हो मगर दोनों उनको मानते जरूर हैं। एक जगह ऐसा देखने में आया है कि भद्रबाहु और वराहमिहिर दोनों सगे भाई थे मगर इतिहास इसे मंजूर नहीं करता है दो मत दीखते हैं।

भद्रबाहु ने अनेक शास्त्र ग्रंथों पर निर्युक्ति यानि टीकाओं लिखी है। आपके द्वारा विरचित कल्पसूत्र जैनों में ऊंचा में ऊंचा

सूत्र माना जाता है यहा तक कि सूत्र शिरोमणी यही है और भद्रबाहु संहिता नामक एक ज्योतिष सम्बन्धी ग्रंथ भी लिखा था, आप ज्योतिष तथा राजनीति के प्रकाण्ड विद्वान थे।

धर्म के सिद्धान्तो पर विशेष चर्चा करनेवाले सबसे प्रथम वाचक उमास्वाती महाराज हुए, जिन्होंने संक्षेप मे समस्त धर्मों की चर्चा की थी जो आज आपके द्वारा विरचित प्रसिद्ध "तत्त्वार्थधिगम सूत्र" सब सम्प्रदाय के माननीय है, उमा माता और स्वाती पिता के नाम से गुरुदेव ने दोनों का नाम चिरस्मरणीय हो इसके लिये उमास्वाती शिष्य का नाम रख दिया था जोकि आप दिग्गज पाण्डित्य के रूप में समार में चमक उठे थे।

उनके बाद सिद्धसेन दिवाकर का नाम सुप्रसिद्ध है राजा विक्रम को प्रतिबोध कर जैनधर्मी बनाया था आप ब्राह्मण जाति के थे, वृद्धवादी सूरि के साथ शास्त्र में परास्त होने पर आपने दीक्षा ली एक बार सिद्धसेन दिवाकर ने प्राकृत सूत्रो को संस्कृत में बनाने का विचार किया इस पर गुरुदेव ने गच्छ बहार कर दिया था अथवा अठारह देश के अधिपति को प्रतिबोध करने पर पुन सामिल लिया जायगा।

आप उज्जैनी के महार मन्दिर में जा शिवलिंग सामे पग रख सो गये इस पर राजा के आदेश से मारपीट शुरु हुई मगर राजा की राणियां चिल्ला उठी रोने लगी इस महान चमत्कार से रंजित हो राजा विक्रमादित्य आपका शिष्य बना शिवलिंग तरफ कर लम्बा करने पर लिंग फट गया और उसमेंसे पार्श्वप्रभु की प्रतिमा निकली जो कि वह प्रतिमा आज भी उज्जैनी में मौजूद है।

न्याय उपर स्वतंत्र ग्रन्थ लिखनेवाला जैनों में जो कोई हुआ तो पहले सिद्धसेन दिवाकर था, ३२ श्लोक के न्याय में समस्त दर्शनों

को घेर लिया याको भी विद्वान के शब्दों में कहें तो विद्वान बौद्ध तार्किक धर्मकीर्ति का न्याय बिन्दु पढ़ने के बाद ही सिद्धसेन ने न्याय का ग्रन्थ लिखा है।

विद्वान सामन्तभद्र ने आप्तमिमांसा नामक तर्कशास्त्र और अध्यात्मशास्त्र लिखा है। वीर सं० ९८० में वल्लभीपुर में श्वेताम्बर ग्रन्थों की व्यवस्था की गई है। उनके बाद कितने ही आचार्य भगवंतों ने टिकाएं लिखी है जब वल्लभीपुरी में सघ के अध्यक्ष देवर्द्धि क्षमाश्रमण महाराज थे। टीकाकारों के नाम इस प्रकार कहे जाते हैं। ७ के सैका में सिद्धसेन दिवाकर ८ सैका में हरिभद्र ९ में शीलां कसूरि, ११ शान्तिसूरि, देवेन्द्रसूरि, और अभयदेवसूरि महाराज हुए हैं।

अभयदेव सूरि महाराज ने तो नव अंग के ऊपर टीका लिख कर जैन समाज के ऊपर महान उपकार किया है। आप कोढ रोग से पीड़ित थे, जब अनशन करने का विचार कर लिया था तब शक्रेन्द्र देव लोक से आकर वन्दन कर बोला, भगवन, आपका अभी बहुत काम है अनशन नहीं करो, आप शंखेश्वर पार्श्वनाथ भगवान् का स्नात्र जल लें शरीर पर छांटने से रोग मुक्त हो जायेंगे। आप चिन्ता न करें। ऐसा कह वन्दना कर इन्द्र चला गया, फिर आचार्यदेव ने वैसा ही किया और रोगमुक्त हो गये और आप नवांगी के टीकाकार कहलाते हैं। १२ वें सैका में मलयगिरी जो हुए इन सब लेखकों ने केवल टीका लिखी इतना ही नहीं अपितु स्वतंत्र ग्रन्थ भी रचे हैं।

हरिभद्र जाति के ब्राह्मण थे चउदह विद्या के विशारद थे, एक बार साध्वीजी से प्रतिबोध पाया जिससे दीक्षा अंगीकार की

आप की विद्वत्ता अजोड थी, १४४४ ग्रंथ आप ने रचे हैं जिनमें नीति और न्याय के ग्रंथ भी बनाये हैं।

श्वेताम्बरों में सब से अधिक प्रसिद्ध हेमचन्द्राचार्य हुए, आपका अध्यात्म उपनिषद, और योगशास्त्र, संसार में प्रसिद्ध है। आपका ज्ञान अद्वितीय था इसी से तो प्रसन्न होकर कुमारपाल ने "कलिकाल सर्वज्ञ" का बिरुद दिया था जो वास्तव में सार्थक था। वीतराग स्तोत्र त्रिषष्ठिशलाकापुरुष चरित्र लिख कर जैन धर्म की महान सेवा की है, जैनेन्द्र व्याकरण की भांति सिद्धहेम व्याकरण आपकी सब में श्रेष्ठ व्याकरण मानी जाती है। आपके द्वारा विरचित "अन्ययोगव्यवछेदिका" नाम की बत्तीसी, के ऊपर १२६२ में मल्लिषेण सूरि ने स्याद्वाद मंजरी नाम का मनोहर टीका लिखी है टीका भी तर्क शास्त्र में अग्रस्थान रखती है। हेमचन्द्राचार्य ने परिशिष्ट पर्व में भी जैन धर्म का इतिहास लिखने का ठीक प्रयत्न किया है उनके बाद प्रभाचन्द्र ने और प्रद्युम्नसूरि ने "प्रभावक चरित्र" ग्रंथ लिख २२ प्रसिद्ध जैनाचार्यो के विस्तृत जीवन पर दृष्टिपात किया है।

धार्मिक सिद्धात क ऊपर अनेक लेखकों ने कलम चलाई है, देवेन्द्रसूरिजी ने १३ सैका में कर्म ग्रंथ रचा है उस में कर्म पर खूब बारीकाट से विवेचन किया गया है।

शाकटायन नाम के एक प्रसिद्ध जैनाचार्य ई० स० ४ हजार तीन सौ वर्ष पूर्व हो चुके हैं ऐसा इतिहास बताता है, उन्होंने सर्व प्रथम व्याकरण रची थी, जिसका उल्लेख पाणिनीय पण्डित ने पाणिनी व्याकरण में किया है "व्योर्लघुप्रयत्नतर शाकटायनस्य" इस सूत्र से साबित होता है कि शाकटायन नामक एक विद्वान हुआ है, और इतिहास तथा पूरा तत्ववेत्ताओं से यह निर्णय हो चुका

है कि वे महान् विद्वान एवं जैनाचार्य ही थे। पाणिनी ऋषि ने भी उनका सहारा लिया था यह ऊपर के सूत्र से सिद्ध हो जाता है। इन से यह भी सिद्ध हो जाता है कि जैन धर्म ई० स० चार हजार वर्ष पहले भी था।

"महाश्रमणसंघाधिपते श्रुतकेवलि देशीयाचार्यस्य शाक्टायनस्य कृतौ" शाकटायनाचार्य ने व्याकरण के अन्त में इस प्रकार का उल्लेख किया है। "महाश्रमण संघाधिपते" "श्रुतकेवलि देशीयाचार्यस्य" ये दो शब्द जैन सम्प्रदाय के मुनिओं के लिये ही उपयोग किया जाता है, मद्रास कोलेज के प्रोफेसर ने भी इस बात का प्रस्तावना में समर्थन किया है सब तरह से विचार करने पर यह स्पष्ट है कि शाकटायन जैनाचार्य ही थे।

गुणरत्नसूरि ने १४००के लगभग हरिभद्रसूरि के न्याय ग्रथ पर टीका लिखी है। महामहोपाध्याय श्री धर्मसागर जी ने १५७३ में "कुपक्ष कौशिक सहस्रकिरण" नामक ग्रथ लिख दिगम्बर तथा खरतरगच्छ को चुनौती दी है। जगद्गुरु श्री हीरविजय सुरि ने, "जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति" पर वृत्ति लिखी है, शान्तिचन्द्र, तथा भानुच द्र इन दोनों उपाध्यायों ने भी अनेक ग्रथ लिखे हैं। सूर्यसहस्रनामस्तोत्र बनाकर अकबर को पढ़ाया था, १७ शताब्दि के विनयविजयजी, और यशोविजयजी प्रकाण्ड विद्वान् एवं सफल कवि थे। विनयविजयजी ने लोकप्रकाश ग्रथ रचा है जिसमें सात सौ ग्रथों की साक्षी दी है लोकप्रकाश मानो कि जैना का ज्ञान सागर है यशोविजयजी ने न्याय और तर्क ऊपर स्वतंत्र ग्रथ लिखे हैं, "प्रतिमाशतक" में तो आप ने मूर्तिपूजा का खूब विश्लेषण किया है। विनय विजयजी ने कल्पसूत्र पर सुबोधिका नाम की टीका लिखी है इन दोनों विद्वानों ने जैन समाज की बहुत सेवा की है।

इसी प्रकार अनेक जैनाचार्यों ने समयानुकूल ग्रंथ रचे हैं। ज्योतिष नीतिशास्त्र, न्याय शास्त्र, व्याकरण, साहित्य, काव्य, अलंकार और धार्मिक आदि अनेक विषयों पर जैन लेखकों ने कलम चलाई है जैनाचार्यों ने सब विषय में प्रवेश किया था। ऐसा एक भी विषय नहीं था जो कि जैनाचार्य से अज्ञात रह गया हो, यहां तक कहूँ कि 'कोक शास्त्र" भी जैन नवुंदाचार्य ने लिखा है।

इस प्रकार जैन शास्त्र रचे गये हैं यह अपने ऊपर विचार कर आये अब यहां जैनों के १४ पूर्व माने जाते हैं तो उस पर भी विवेचन नाम के साथ थोड़ा कर लेना उचित है।

१४ पूर्व के नाम तथा व्याख्या—

(१) उत्पादपूर्व (उप्पायपुव्व) इस में द्रव्य की उत्पति, स्थिति और लय का वर्णन किया गया है इसके ११ करोड़ पद बताये हैं।

(२) आग्रायनीयपूर्व (अग्गेनीयपुव्व) इस में मूल तत्त्व और द्रव्य का विषय प्रतिपादित है इसके ६६ लाख पद हैं।

(३) वीर्यप्रवादपूर्व (वीरियप्पवायपुव्व) इस में महापुरुष और देव की शक्ति का वर्णन है इसके ७० लाख पद हैं।

(४) अस्तिनास्ति प्रवादपूर्व (अत्थिनत्थियपवायपुव्व) इस में निर्णय के ७ प्रकार, न्याय के ७ प्रमाण, वस्तुस्थिति का निर्णय किया है, ६० लाख पद इसके हैं।

(५) ज्ञानप्रवादपूर्व (ज्ञानप्पवायपुव्व) इस में सत्य और मिथ्या ज्ञान की चर्चा की गई है इसके ३६ करोड़ पद हैं।

(६) सत्यप्रवादपूर्व (सच्चप्पवायपुव्व) इस में सत्य और असत्य वचन का निर्णय है इसके १ करोड़ आठ लाख पद हैं।

(७) आत्मप्रवादपूर्व (आयपवायपुव्व) इसमें आत्मा के स्वभाव का वर्णन किया गया है इसके २६ करोड पद हैं।

(८) कर्मप्रवादपूर्व (कम्मप्पवायपुव्व) इसमें कर्म की चर्चा है १ करोड़ ८ लाख पद हैं।

(६) प्रत्याख्यानप्रवादपूर्व (पच्चक्खाणप्पवायपुव्व) इसमें कर्मक्षय की चर्चा की गई है इसके ८४ लाख पद हैं।

१०) विद्याप्रवादपूर्व (विज्जाप्पवायपुव्व) इस में प्रत्येक विद्या कैसे प्राप्त हो ? इसका वर्णन दिया है। ११ करोड १५ लाख पद इसके हैं।

११) कल्याणप्रवादपूर्व (अवज्झपुव्व) इसमें ६३ शलाकापुरुष का जीवन वर्णन है इसके ६२ करोड पद हैं।

१२) प्राणवादपूर्व (पाणावयपुव्व) इसमें औषध सम्बन्धी चर्चा की गई है। इसके १ करोड ५६ लाख पद हैं।

१३) क्रियाविशालपूर्व (किरियाविशालपुव्व) इस में संगीत, वाद्य, कला तथा धर्मक्रिया का वर्णन किया है। इसके ६ करोड़ पद हैं।

१४) लोकबिन्दुसार (लोगविन्दुसार) इस में लोक सम्बन्धी, धर्म सम्बन्धी, क्रिया सम्बन्धी और गणित सम्बन्धी विचार किया गया है। इस में १२॥ करोड पद माना गया है।

उपरोक्त १४ पूर्व की नाम सहित संक्षेप में व्याख्या कर दी गई है। पद संख्या जो बताई है उसमें एक पद के ५१०८८६८४० अक्षर होते हैं। एक पूर्व एक हाथी प्रमाण स्याही से लिखा जाता है। दूसरा दो हाथी तीसरा चार हाथी प्रत्येक को दूना दूना करते हुए १४ वाँ पूर्व ८१९२ हाथी, और कुल १६३८३ हाथी प्रमाण स्याही से लिखा जाता है। ऐसी जैनों की मान्यता है।

जैनों के पंच परमेष्ठी—

(१) अरिहंत (२) सिद्ध (३) आचार्य (४) उपाध्याय (५) और साधु

(१) अरिहंत—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय औ अंतराय इन चार घाति कर्मों का क्षय होने के बाद अरिहंत कहला हैं और ये मानव को सन्मार्ग बताते हैं अरिहंत का स्वरूप सफे और गुण १२ माने गये हैं (१) ज्ञानातिशय (२) वचनातिश (३) अपायापगमातिशय (४) अशोकवृक्ष (५) सुरपुष्पवृष्टि (६) दिव्य ध्वनि (७) चामरयुग्म (८) स्वर्ण सिंहासन (९) भामण्डल (१०) छत्रत्र (११) दुंदुभि (१२) पूजातिशय, जैनी लोग "नमो अरिहंताणं" बोल कर आपको नमस्कार करते हैं।

(२) सिद्ध—चार घाति, वेदनीय आयु, नाम और गौत्र इन चार अघाति कुल आठ कर्मों को क्षय करके शाश्वत धाम मोक्ष में पधार गये हैं लोकाग्रभाग के शाश्वत स्थान में ज्योति रूप विराजमान हो गये हैं आप का स्वरूप लाल तथा आठ गुण माने गये हैं। (१) अनंतज्ञान (२) अनंत दर्शन (३) अनंत चारित्र (४) अनंत वीर्य (५) अव्याबाध्यगुण, (६) अक्षयस्थितिगुण (७) अरूपी निरंजनगुण (८) और अगुरुलघुगुण। जैनी लोग आपको "नमो सिद्धाणं" पूर्वक नमस्कार करते हैं। इसका प्रतिदिन जाप करते हैं।

(३) आचार्य—आचार्य जैन शासन के मुख्य नेता माने गये हैं जैसे स्वर्णकार सोने की कसौटी करता है वैसे ही आप शास्त्रों की सत्यासत्य की परीक्षा करके जनता के सामने प्ररूपणा करते हैं। आपका वर्ण पीला और ३६ गुण बताये हैं। ५ महाव्रत ५ आचार ५ समिति, ३ गुप्ति, ५ इन्द्रिय निग्रह, ९ विध ब्रह्मचर्य की वाड

पालन, ४ कषायदमन इस प्रकार ३६ गुण होते हैं। आठ प्रकार की सम्पदा भी मानी है आचार, सूत्र, शरीर, वचन, वाचना, मति, प्रयोग और सग्रहसम्पदा। 'नमो आयरियाए' से आपको प्रणाम करते हैं।

(४) उपाध्याय—स्वयं पढे और पढावें इसका उपाध्याय, आपका वर्ण लीला है क्योंकि आप पढे व पढावे में हरेभरे रहते हैं। आपके २५ गुण इस प्रकार हैं ११ अग और १२ उपाग, चरण सित्तरी और करणसित्तरी। चरणसित्तरी- ४पिडविशुद्धी ५ समिति १२ भावना १२ प्रतिमा, ५ इन्द्रियनिग्रह, २५ प्रतिलेखन ३ गुप्ति और ४ अभिग्रह। करणसित्तरि- ५ महाव्रत, १० श्रमणधर्म, १७ सयम, १० वैयावच्च ६ ब्रह्मचर्यवाड, ३ दर्शन ज्ञान चरित्र, १२ तप क्रोधादि ४। आपको "नमो उवज्झायाणं" बोल कर जैनी प्रणाम करते हैं।

(५) साधू—जैसे कोई मत्रवादी अपना काम पूरा करने के लिये सब प्रपन्चों को छोड़कर अनेक उपसर्गों को दृढता पूर्वक सहन करता है ठीक वैसे ही सर्वप्रकार के सावद्य व्यापार का परित्याग कर आत्मसाधन में यानी एकान्त मोक्ष सुख प्राप्त करने में जुट जाता है अनेक उपसर्गों को सहन करता है उसका नाम साधु। जब तक साध्य प्राप्त न हो तब तक चिंतित अवस्था में रहने के कारण उनका वर्ण काला बताया जाता है। आपके २७ गुण बताये हैं पाच महाव्रत, पांच इन्द्रिय चार कषाय, तीन गुप्ति, छ काय, अलाभ, क्षमा, वेदना और मरणान्तकष्ट। आपको "नमो लोए स"व साहूण" बोल कर नमस्कार करते हैं।

२२ परिषह—क्षुधा परिषह, पिपासा परिषह, सीतप उष्ण परिषह, दमर्मस परिषह, अचेल परिषह, अरतिप,

चारिया प निसिया प, सिज्जा प, आक्रोस प, वध प, याचना प, अलाभ प, रोग प, तणफाम परि, माल प, सत्कार प, प्रज्ञा प अज्ञाण प और दमण प

उपरोक्त बताये गये अरिहंत, सिद्ध, आचार्य उपाध्याय और साधु इन पाचो को परमेष्टी कहते हैं और सब सम्प्रदाय के मान्य हैं अरिहत के १२ गुण, सिद्ध के ८ गुण, आचार्य के ३६ गुण उपाध्याय के २५ गुण और साधु के २७ गुण, सर्व १०८ गुण होते हैं इन १०८ गुणों की अपेक्षा से ही १०८ मणके माला के माने हैं जो कि सर्व दर्शनवाले मानते हैं, उन पुरुषो के गुणों का स्मरण रूप ही यह माला बनाई गई है।

जिस प्रकार वेदान्ती लोग, शैवलोग वैष्णव और इतर सम्प्रदाय में गायत्रीमंत्र०, को प्रधान मानते हैं। मुसलमान "कलमा" पढते हैं, ठीक वैसे ही जैन सम्प्रदाय में पचपरमेष्ठी रूप— नमस्कार महामन्त्र सबसे उत्तम और सर्वसम्प्रदाय के मान्य और आदरणीय है। यद्यपि कलमा और गायत्री तो मतमतान्तर के कारण बहुत हो गई हैं मगर जैनो के लिये एक ही नवकार मंत्र माना गया है चाहे श्वेताम्बर हो या दिगम्बर, चाहे तेरापन्थी हो या स्थानकवासी, मगर मूल पचपरमेष्ठी मत्र तो एक नवकार ही है जोकि सर्व प्रथम मगलाचरण मे मैंने लिखा है। यह नवकार चउदह पूर्व का सार माना गया है इसको कोई बनानेवाला नहीं है अनादि और अनन्त है यानि सदा शाश्वत है इस मंत्र के बल पर लाखों मानव संसार सागर से पार हो गये, होते हैं, और होंगे। इसके समान ससार में एक भी मत्र नहीं है जोकि मानव को मोक्ष तक पहुचा सकता हो।

जैनधर्म के साधन

यहां पर जैन सिद्धान्त के साधन का वर्णन करने का प्रयत्न किया जाता है यद्यपि सब दर्शनों ने अतिम ध्येय तो मोक्ष ही बत लाया है मगर मोक्ष के स्वरूप में बहुत कुछ फर्क पड़ता है।

जैनधर्म जीव की मुख्य दो अवस्था बताता है (१) ससारी अवस्था (२) दूसरी मुक्त अवस्था। यह जीव अनादिकाल से कर्म के सम्बन्ध से चौरासीलाख जीवायोनि म परिभ्रमण करता रहता है जब वह उत्कृष्ट आराधना के बल पर कर्मो का क्षय सर्वथा करदेता है तब वह अंतिम साध्य (मोक्ष) को प्राप्त कर सकता है।

जैनसिद्धात में कर्म को प्रधान पद दिया है। मानव कर्म के बल पर ही नाचता फिरता है, कर्म ही मानव को प्रेरणा देता है।

जीव के राग द्वेषादिक परिणामों के निमित्त से कार्मण वर्गणा रूप पुद्गल स्कध जीव के साथ बन्धन को प्राप्त होते हैं उनको कर्म कहते हैं और कर्म आठ प्रकार के कहे जाते हैं। अब यहा कर्मों का वर्णन कर लेते हैं।

(१) ज्ञानावरणीय कर्म—आख के ऊपर पट्टी के सदृश माना गया है जैसे कि आख पर पट्टी बान्धने से देखना बन्ध हो जाता है ठीक उसी प्रकार ज्ञान के ऊपर कार्मण परमाणु आच्छादित हो जाते हैं। उसी को ज्ञानावरणीयकर्म कहते हैं। इसके मति ज्ञान, श्रुतज्ञान अवधिज्ञान, मन पर्यव और केवल ज्ञान, पांच भेद हैं और ३० कोड़ाकोड़ी सागरोपम की स्थिति है।

(२) दर्शनावरणीय—पोल अर्थात् दरवाजा के रक्षक की उपमा दी गई है जैसे कि कोई मनुष्य मकान में प्रवेश करने की इच्छा

रखने पर भी उस रक्षक की आज्ञा के बिना अन्दर नहीं जा सकता, ठीक वैसे ही चक्षु के द्वारा बहुत दूर की वस्तु देखने की भावना होने पर भी दर्शनावरणीय कर्म के कारण देख नहीं सकता, उसे दर्शनावरणीय कर्म कहते हैं इसके ९ भेद हैं और ३० कोड़ा कोड़ी सागरोपम की स्थिति वाला यह कर्म है।

(३) वेदनीय—खड्ग की धारा के ऊपर शहद लगे हुए की उपमा दी गई है, सातावेदनीय और असातावेदनीय दो प्रकार से है तलवार की धार पर लगे हुए शहद को चाटने मे स्वाद लगता है किन्तु अन्त में शस्त्र की धारा से जीभ कटजाने पर कितना दुःख होता है ? उसी प्रकार सांसारिक सुखों को भोगते हुए बहुत ही आनंद जीव मानता है किन्तु अन्त में विपाक उदय आने पर बहुत कष्ट पाता है उसी को सातावेदनीय कहते हैं। शरीर में नानाविध रोगों का उत्पन्न होना, पुत्र पुत्री तथा पति पत्नी का विरह होना द्रव्य की अप्राप्ती से दुःख होना इसी का नाम असातावेदनीय है। ३० कोड़ाकोड़ी सागरोपम की स्थिति बताई गई है।

(४) मोहनीय—मद्य अर्थात दारू की उपमा दी गई है। मद्य का नशा करने पर मानव शुद्धबुद्ध खो बैठता है। कुछ भी भान नहीं रहता ठीक वैसे ही राग द्वेष मोह मे फसे हुए जीवात्मा को आत्मा के स्वभाव का ज्ञान नहीं रहता, इस मोहनीय कर्म की ७० कोड़ाकोड़ी सागरोपम की स्थिति है सब कर्मों में यह भयंकर माना जाता है इसी के द्वारा आत्मा ऊपर चढने पर भी गिर जाती है इसको जीता उसने सबको जीत लिया इसके ८ प्रकार हैं।

(५) आयुष्य—कारागृह (जेल) के समान माना गया है, जैसे न्यायाधीश किसी अपराधी को उसके अपराध के कारण अमुक

काल तक जेल में डालदेता है और वह चाहता है मैं जल्दी से जल्दी इससे छुटकारा पाऊं किन्तु पूर्ण अवधि हुए बिना नहीं जा सकता। ठीक उसी तरह नरक तिर्यंच मनुष्य और देवगतियों में जीवात्मा की इच्छा रहने की न होने पर भी स्थिति पूर्ण किये बिना निकल नहीं सकता, यानि जितना भी आयुष्य हो उसे पूर्ण किये बिन छुटकारा नहीं होता, इसका नाम आयुष्य कर्म है, इसके चार भेद और ३३ सागरोपम की स्थिति है।

(६) नाम कर्म—चित्रकार के समान है, जैसे चित्रकार अनेक प्रकार के मनुष्य, हाथी, सिंह गौ, घोड़ा गधा मयूर, इत्यादि चित्र बनाता है, वैसे ही नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव आदि गति को नाम कर्म कहते हैं इनके १०३ भेद है और २० कोड़ा कोड़ो सागरोपम की स्थिति है।

(७) गोत्र कर्म—कु मकार के सदृश माना गया है, वह भी दो प्रकार का है, एक ऊच, दूसरा नीच। जैसे कु भार ऐसे घड़ों को बनाता है जो कि अक्षत चन्न आदि से पूजे जाते हैं घी दूध, दही भरा जाता है कुछ ऐसे घड़े बनाते हैं कि जिसमें मद्य डाला जाता है, अथवा नहीं खाने के काम में लिया जाता है, जिस कर्म के उदय से जीव उत्तम कुल में जन्म लेता है वह उच्च गोत्र कहलाता है और जिस कर्म के उदय से नीच कुल में जन्म लेता है वह नीच गोत्र कहलाता है, उच्च कुल में इक्ष्वाकु वश हरिवंश, यादववश, चन्द्रवश वगैरे समझना चाहिये। और नीच कुल में भिक्षुक कसाई मद्य मांस बेचने वाला आदि मानना चाहिये। २० कोड़ा कोड़ी सागरोपम की स्थिति है।

अन्तरायकर्म—राजा के भंडारी के सदृश माना जाता है यदि कोई याचक राजा के पास मांगनी करता है, उसके वचन पर

विश्वास रख भंडारी को राजा आज्ञा दे डालता है कि इनको इतनी वस्तु का प्रबन्ध कर देना । राजा के चले जाने पर भंडारी इन्कार कर देता है, याचक को लौट जाना पड़ता है, राजा की इच्छा होने पर भी भंडारी ने सफल नहीं होने दी । ठीक इसी तरह जीव राजा है दान आदि देने की इच्छा है मगर भंडारी रूप अन्तराय कर्म निषेध कर देता है, उसकी इच्छा को निष्फल बना देता है इसके भी ५ भेद हैं, दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय । कुल ८ कर्मों की १४८ उत्तर प्रकृति होती है । बंध में एक समय ११७, उदय में १२० । उदीरणा १२२ और सत्ता में १४८ होती है । ३० कोड़ा कोड़ी सागरोपम वाला माना जाता है ।

आत्मा चेतन और कर्म जड़

यदि कोई ऐसी शंका कर बैठता है कि आत्मा चैतन्य वाला है और कर्म जड़ है तो जड़ चैतन्य को कैसे नचा सकता है ? और इन दोनों का सम्बन्ध कब हुआ ? इसका उत्तर देते हुए कहा, है कि यह बात बिल्कुल सत्य है कि आत्मा अनन्तशक्ति का धारक है इसमें कोई शक नहीं फिर भी उन्हें कर्म नचा देता है ।

जैसे कि कोई महान बुद्धिमान एवं चतुर व्यक्ति है, सारा गांव उसकी सलाह लेता है गांव में प्रतिष्ठित आगेवान माना जाता है मद्य एक जड़ है उस बुद्धि सम्पन्न व्यक्ति को पिलाया जाय तो पागल बनता या नहीं ? कहना होगा कि बुद्धि का नाश हो जायगा और पागल की भांति चींथरा फाड़ने लग जायगा, जड़ मद्य में यह शक्ति कहां से आई कि चैतन्य आत्मा को उन्मत्त बना दिया । इसी तरह कर्म जड़ होने पर भी आत्मा को इधर उधर परिभ्रमण करा देता है ।

आत्मा के साथ इनका सम्बन्ध कब हुआ ? यह प्रश्न रहा, इसका उत्तर ज्ञानी पुरुषों ने दिया है कि अनादिकाल का सम्बन्ध

है। यह कोई नहीं बता सकता कि मट्टी में यानि पृथ्वी में सोना किसने डाला और कब डाला ? इसी प्रकार मट्टी और सोने का भी अनादिकाल का सम्बन्ध है मगर मट्टी से सोना निकाल देने पर यंत्रों द्वारा परिमार्जित होकर शुद्ध बनता है, ठीक वैसे ही ध्यानानल के द्वारा आठ कर्मों को सर्वथा नाबूद करके यह आत्मा मोक्ष धाम में चला जाता है उसका नाम है मुक्तात्मा और वह पुन संसार में नहीं आता।

आत्मा कहो, जीव कहो अथवा चैतन्य कहो, य सब आत्मा के पर्यायवाची शब्द हैं। आत्मा का मूल स्वरूप सच्चिदानन्द मय है, आत्मा अरूपी है, अभेदी है, अच्छेदी है जैसा कि ईश्वर है। लेकिन ईश्वर और आत्मा में इतना अन्तर है कि ईश्वर निर्लेपि है, निरावर्ण है शुद्ध स्वरूपी है, और यह आत्मा ढका हुआ है, आच्छादित है, आवरण सहित है यही कारण है कि इसको संसार में पर्यटन करना पड़ता है सुख दुःखों का अनुभव करता है । इन आवरणों को ही जैनशास्त्र कर्म कहते हैं। चैतन्य शक्तिवाले आत्मा के ऊपर जड के ऐसे थर लगे हुए हैं कि आत्मा इससे दबता जा रहा है जैसे कोई तुम्बा हो, और तुम्बे का स्वभाव पानी पर तैरने का है फिर भी उसके ऊपर कपड़ा तथा मट्टी का काफी लेप कर खूब वजनदार बना दिया जाय तो वही तुम्बा तैरने के बल्ले पानी में डूब जायगा ठीक यही दशा आत्मा की है, राग द्वेष की चिकनाई के कारण आत्मा का ऊर्ध्व स्वभाव होने पर भी नीचे दब जाता है। और आत्मा और कर्म का अनादिकाल का सम्बन्ध है वैसे ही राग द्वेष भी अनादिकाल से साथ है।

किसी समय आत्मा शुद्ध थी और बाद में राग द्वेष से आत्मा व्याप्त हो ग[illegible] तो कदापि नहीं कह सकते, क्योंकि

कहा जाय तो मुक्तात्माओं में भी राग द्वेष का सम्भव हो जायगा। इसलिये यह मानना ही सर्वथा उचित है कि आत्मा और उस पर रागद्वेष की चिकास अनादिकाल से है और कर्म के आवरण उसपर लगे रहते हैं।

ऊपर कहे अनुसार-जैसे खान से सोना निकाल कर प्रयोगों द्वारा शुद्ध किया जाता है, तब माटी माटी रह जाती है और सोना सोना बन जाता है ठीक वैसे ही तप त्याग रूप प्रयोगों द्वारा आत्मा और कर्म अलग अलग हो सकते हैं और कर्म अलग होते ही आत्मा अपने असली रूप में आजाती है असली स्वरूप को धारण करना, उसी का नाम मोक्ष है।

कर्म बन्धन के संक्षेप में चार कारण बताये हैं (१) मिथ्यात्व (२) अविरति (३) कषाय (४) और योग। इनके जर्ये ही कर्म बधते हैं।

सब प्रकार से विचार किया तो यही सिद्ध हुआ कि आत्मा और कर्म दोनों अनादिकाल से सम्बन्ध रखते आये हैं और जब तक जीव का मोक्ष न होगा तब तक वैसा ही रहेगा जैसा कि दूध और मिश्री हो।

कर्म क्षय होना उसका नाम मोक्ष है। उसअवस्था में जीव के ज्ञानादि अनंतगुणों की स्वाभाविक अवस्था प्राप्त होती है। उसी अवस्था में सदा विद्यमान रहते हैं, फिर ससार में नहीं आते ऐसी आत्यन्तिक अवस्था को मोक्ष कहते हैं, और जैन तत्त्व का सर्वोत्कृष्ठ परमतत्त्व और अंतिम साध्य वही है, इसी साध्य को सिद्ध करने के लिये मानव मेहनत करता है।

मोक्ष में रहे हुए जीवों के न तो शरीर है, न आयुष्य है, न कर्म है, न प्राण है, न योनि है, न वर्ण है, न गन्ध है, न रस है, और न स्पर्श है। केवल सादि अनन्त स्थिति मानी गई है क्योंकि मोक्ष में जाने का जो काल था वह आदि है किन्तु वापस नहीं लौटने से सादि अनन्त स्थिति बताई है सिर्फ अक्षय अव्याबाध स्थिति वाले सर्व सिद्ध भगवान होते हैं। जिसको अपने यहां मुक्तात्मा कहते हैं। मुक्त जीव के बारे में जरा विचार करते हैं।

अट्ठविहकम्मवियला सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा ।
अट्ठगुणा किदकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा ॥

इन सात प्रकार के विशेषणों द्वारा सब दर्शन का वर्णन मार्मिक शब्दों में किया गया है।

(१) सदाशिव मतवाले कहते हैं कि जीव सदा कर्म से रहित शुद्ध ही होता है जीव की अशुद्धावस्था ही नहीं है, जीव सदैव मुक्त है इस मत का निराकरण करने के लिये पहला विशेषण "अष्ट विधकर्मविकला" दिया है, जीव आठों कर्मों से रहित होकर ही मुक्त होता है।

(२) सांख्य मतवाले मानते हैं कि बंध, मोक्ष, सुख, दुःख ये सब प्रकृति के होते हैं आत्मा को नहीं। उसका निराकरण करने के लिये "शीतीभूता" यानी सुख स्वरूप कहा है।

(३) मस्करी मतवाले कहते हैं कि मुक्त जीव वापस संसार में आता है उसका निराकरण करने के लिये 'निरंजना' यह विशेषण दिया है अर्थात् मुक्तजीव भाव कर्मों से रहित होने से उसको वापस लौटने का कोई निमित्त ही नहीं रहता।

८ पू० प० म० के० का	१	भरत ऐरवत के मनुष्यों का केशाग्रभाग
८ भ० ए० म० के० का	१	लींख
८ लींख	की	१ जू
८ जू	का	१ जव का मध्यभाग
८ जव	का	१ उत्सेधांगुल होता है
६ उत्सेधांगुल	का	१ पाद
२ पाद	का	१ वेंत
२ वेंत	का	१ हाथ
४ हाथ	की	१ कुची
२ कुची	का	१ दंड (धनुष)

दो हजार धनुष का १ कोश ४ कोश का १ जोजन।

असंख्य कोटाकोटी योजन प्रमाण का एक रज्जु होता है ऐसे जैन सिद्धान्त ने १४ राजलोक माना है सात राज नीचे नारकी-सम्बन्धी और सात राज ऊपर देवलोक से लगाकर सिद्धशीला पर्यन्त। अर्थात् १४ राजलोक के ऊपर में सिद्धों के रहने का स्थान माना है।

इस १४ राजलोक का ठीकतया समझ में आने के लिये आगे पुरुषाकृति के रुप में नक्शा देखिये।

श्री पुरुषाकृतिमय
चउदह राजलोक
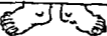
परमाणु—

जालान्तर्गते भानुर्यत सूक्ष्म दृश्यते रज
तस्य त्रिंशत्तमो भाग परमाणु स उच्यते ।।

सूर्य अस्त होने के समय किवाड़ के छिद्र में से किरण की ताड़ी में जो सूक्ष्म रज का कण देखने में आता है उनके ३० वें भाग को परमाणु कहते हैं कोई ६० वें भाग को कहते हैं।

१४ गुण स्थान —

मोह और योग के निमित्त से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र रूप आत्मा के गुणों की तारतम्य (न्यूनाधिक) रूप अवस्था को गुण स्थान कहते हैं और वे १४ हैं मोक्ष में जाने के लिये यह पगथिये कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

(१) **मिथ्यादृष्टि गुणस्थान**—जो चीज जैसी है वैसी न मान कर उल्टी श्रद्धा रखना उसे मिथ्या दृष्टि कहते हैं। जैसे धतूरे के बीज को खाने वाला मनुष्य सफेद चीज को भी पीली देखता है। और मानता है, ठीक वैसे ही मिथ्यात्वी जीव भी जो देव गुरु और धर्म के लक्षणों से रहित है उनको भी देव गुरु और धर्म मान बैठता है। यह मिथ्यात्व ही संसार में रखड़ाने का मूल कारण माना गया है। इस मिथ्यात्व के उदय से सत्य मार्ग का उपदेश देने पर भी उसे श्रद्धा नहीं होती और बिना उपदेश ही अधर्म के मार्ग की तरफ प्रवृत्ति हो जाती है।

मिथ्यादृष्टि के तीन प्रकार भी बताते हैं। कोई तो अनादि-काल से मोह जाल में फसे हुए अज्ञानांधकार के कारण आत्मज्ञान रूप प्रकाश से वंचित हो जाता है। कोई दूसरे के उपदेश से मिथ्या मार्ग पर आरूढ होकर भूतबाधावाले पुरुष की तरह यथेष्ठ चेष्टा करते हैं और कोई यह सच है कि वह सच है इस प्रकार के संशय पाश में

पड जाता है और मिथ्यादृष्टि जीव आत्मज्ञान से विमुख होकर निरतर पचेन्द्रिय के विषय भोगने में रत रहता है।

मिथ्यात्व के १० और ५ भेद—

(१) जीव को अजीव मानना मिथ्यात्व (२) अजीव को जीव मानना मिथ्यात्व (३) धर्म को अधर्म मानना मिथ्यात्व (४) अधर्म को धर्म मानना मिथ्यात्व (५) साधु को असाधु मानना मिथ्यात्व (६) असाधु को साधु मानना मिथ्यात्व (७) ससारी मार्ग को मोक्ष मार्ग मानना मिथ्यात्व (८) मोक्ष मार्ग को ससारी मार्ग मानना मिथ्यात्व (९) मुक्त को अमुक्त मानना मिथ्यात्व (१०) अमुक्त को मुक्त मानना मिथ्यात्व।

(१) अभिग्राहिक मिथ्यात्व (२) अनाभिग्राहिक मिथ्यात्व (३) अभिनिवेशिक मिथ्यात्व (४) साशयिक मिथ्यात्व (५) अनाभोगिक मिथ्यात्व। पहले गुण स्थान के बाद एक दम चौथा गुण स्थान प्राप्त होता है और दूसरा तथा तीसरा गुणस्थान उतरत समय आता है।

(२) सास्वादन गुणस्थान—अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय से सम्यक्त्व को छोड कर मिथ्यात्व की ओर झुकने वाला जीव जब तक मिथ्यात्व को नहीं पाता तब तक यानि जघन्य १ समय, उत्कृष्ट ६ आवलिका पर्यन्त सास्वादन सम्यक् दृष्टि कहलाता है, खाड से मिश्रित श्रीखण्ड का भोजन करने के पश्चात् उल्टी हो जाने पर भी उसका असर जरूर थोडा बहुत रह जाता है उसी तरह सम्यक्त्व छुटने पर भी उस सम्यक्त्व का परिणाम कुछ अश मे रहता है।

(३) मिश्र गुणस्थान—जीव की श्रद्धा जब कुछ सम्यक्त्व और कुछ मिथ्यात्व में होती है तब उसमें मिश्र गुणस्थान माना है। जिससे जीव सर्वज्ञ के कहे हुए तत्वों पर न तो एकान्त रुचि और न एकान्त अरुचि करता है। जिस प्रकार कि

निवासी मनुष्यों ने चावल आदि अन्न न तो कभी देखा और न सुना, इससे वे अदृष्ट और अश्रुत अन्न को देख कर उसके विषय में रुचि या घृणा नहीं करते हैं। इसी प्रकार मिश्र दृष्टि जीव भी सर्वज्ञ कथित मार्ग में प्रीति या अप्रीति न करके मध्यस्थ ही रहता है।

(४) अविरति सम्यक् दृष्टि गुण स्थान–जो सम्यक्-दृष्टि होकर भी किसी प्रकार के व्रत को धारण नहीं कर सकता वह जीव अविरति सम्यक् दृष्टि है। यह गुण स्थान चारों गति में पाया जाता है।

इसमें आत्म स्वरूप की पहचान हो जाने से जीव परद्रव्य मे मोह ममत्व भाव नहीं रखता। विषय भोग इच्छावश नही भोगता किन्तु उसको जो उस पर प्रवृत्ति दिखाई देती है वह केवल चारित्र मोह के तीव्र उदयवश होती है कर्मोदयवश उसे विषयों को भोगना पड़ता है न कि उन्हें वे भोगता है इसे सत तत्त्व का स्वरूप तो वह जरूर समझता है लेकिन चारित्र मोह के उदयवश वह कुछ भी त्याग-ग्रहण नहीं कर सकता। इसलिए इस अविरति सम्यक् दृष्टि कहा है।

(५) देशविरति गुणस्थान—प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय के कारण जो जीव पाप जनक क्रियाओं को बिल्कुल नहीं किन्तु देशत यानि अंशमात्र से त्याग करता उसे देशविरति कहते हैं। ऐसा श्रावक १ या २ आदि व्रतों को स्वच्छानुसार ग्रहण कर सकता है।

जहां जीव पांच स्थूल पापों का त्याग तो कर देता है लकिन सूक्ष्म पापों को उपजीविका का साधन आदि के कारण नहीं छोड़ सकता ऐसे आंशिक त्याग को देशविरति कहा है। इस व्रत को कोई भी पालन कर सकता है। चाहे राजा हो या रंक, क्षत्रिय हो या

ब्राह्मण अथवा वैश्य आदि कोई भी इसे स्वीकार कर सकते हैं और आगे बढ सकते हैं।

(६) प्रमत्त सयत गुणस्थान—जो जीव पापजनक व्यापारों का विधिपूर्वक सर्वथा परित्याग कर देते हैं वे ही संयत (मुनि) कहलाते हैं। संयमी भी जब तक प्रमाद का सेवन करते हैं तब तक प्रमत्त सयत कहलाते हैं। इसमें सयम तो होता है मगर प्रमाद रहता है आत्म स्वरूप में जितनी सावधानता होनी चाहिये उतनी इसमें नहीं होती, आहार लेना गमनागमन करना, निद्रा लेना इत्यादि प्रमाद रहते हैं इसलिये इस गुणस्थान को प्रमत्त संयत कहा है।

अप्रमत्त संयत गुणस्थान—जो मुनि निद्रा, विषय, कषाय, विकथा आदि प्रमादों को सर्वथा छोड़ देते हैं वे अप्रमत्त सयत हैं। सातवें गुणस्थान से लेकर आगे के सब गुणस्थान अप्रमत्त अवस्था के ही होते हैं। जिसमें प्रमाद नहीं रहता, आत्म स्वरूप में पूर्ण सावधान रहता है, उसको अप्रमत्त सयत कहते हैं। इसके दो भेद हैं, स्वस्थान अप्रमत्त, और सातिशय अप्रमत्त। स्वस्थान अप्रमत्त वाला जीव छट्ठे से सातवें में और सातवें से छट्ठे में इस तरह बार-बार चढ़ता उतरता रहता है। लेकिन जब सातिशय अप्रमत्तवर्ती होता है तब वहां से ध्यानस्थ होकर नियम से वह ऊपर ही चढता है। यहां से ऊपर चढने के दो प्रकार हैं (१) उपशम श्रेणी (२) क्षपक श्रेणी। उपशम श्रेणी से चढनेवाला जीव चारित्र मोहनीय कर्म का उपशम (कर्म का अनुदय होकर आत्मा के पास कुछ काल तक दब कर रहना उसका उपशम कहते हैं) करते करते ८-९-१० गुणस्थानों में जाकर नियम से ११ वें गुणस्थान में ही जाता है उसके ऊपर नहीं जा सकता। उसका रास्ता वहां पर बन्द होजाता है, नियम पूर्वक वापस लौटना ही पड़ता है।

और दूसरी क्षपकश्रेणी मे जो चढ़ता है वह चारित्र मोह का क्षय करते करते ८-६-१० गुणस्थानों म चढ़कर नियम से एकदम १२ वें गुणस्थान म वह चला जाता है। वहा से फिर कभी वह वापस नहीं लौटता। और वह नियम से १३ वें और १४ वें गुणस्थान में आरूढ होकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

श्रेणी चढ़ते समय परिणामों की तीन अवस्थाए होती है अध प्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण, और अनिवृत्ति करण। सातवें सातिशय अप्रमत्त गुणस्थान म अध प्रवृत्तकरण परिणाम होते हैं।

(८) निवृत्ति (अपूर्वकरण) गुणस्थान—इस आठवें गुणस्थान क समय जीव पांच वस्तुओं का विधान करता है। (१) स्थितिघात (२) रसघात (३) गुणश्रेणी (४) गुणसक्रमण और (५) अपूर्व स्थितिबन्ध।

(१) ज्ञानावरणीय आदि कर्मों की बड़ी स्थिति को अपवर्त्तना करण से घटादेना इसे स्थितिघात कहते हैं। (२) बन्धे हुए ज्ञानावरणीयादि कर्मों के प्रचुर रस (फल देने की तीव्र शक्ति) को अपवर्त्तना करण के द्वारा मद कर देना, इसे रसघात कहते हैं। (३) जो कर्म के दलिये अपने अपने उदय के नियत समय से हटाये जाते है, उनको प्रथम के अन्तर्मुहूर्त मे स्थापित कर देना गुणश्रेणी कहलाती है। (४) पहले बाधी हुई अशुभ प्रकृतियों को शुभ स्वरूप में परिणत करना गुण सक्रमण कहा जाता है। (५) पहले की अपेक्षा अत्यन्त अल्पस्थिति के कर्मों को बांधना अपूर्व स्थितिबध कहलाता है।

ये स्थितिघात आदि पाच भाव यद्यपि पहले गुणस्थान में भी पाये जाते हैं तथापि आठवें मे वे अपूर्व ही होत हैं क्योंकि प्रथम आदि के गुणस्थानो मे अध्यवसायों की जितनी शुद्धि है उनको

अपेक्षा आठवें गुणस्थान में अध्यवशायों की शुद्धि अत्यंत अधिक होती है।

(६) अनिवृत्ति बादर सम्पराय गुणस्थान—इस गुण-स्थान में स्थूल लोभ रहता है। तथा नवम गुणस्थान के सम समयवर्ती जीवों के परिणामों में निवृत्ति नहीं होती, इसलिये इस गुण स्थान का अनिवृत्तिबादर सपराय ऐसा सार्थक नाम है।

(१०) सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान—इस गुणस्थान में सम्पराय के अर्थात् लोभ कषाय व सूक्ष्म खण्डा का उदय रहता है, इसलिये इसका नाम सूक्ष्म सम्पराय है।

(११) उपशान्तमोह गुणस्थान—जिसके कषाय उप-शान्त हो गये हैं जिनको राग, माया तथा लोभ का सर्वथा उदय नहीं है और जिनको छद्म-आवरण भूत घाति कर्म लगे हुए हैं वे जीव 'उपशान्त कषाय वीतराग छद्मस्थ' कहलाते हैं। उपशम का समाप्त होने पर कर्म का नियम से उदय होता है। उसमें परिणाम में फिर से अशुद्धि होकर वह नियम से नीचे के गुण स्थान में आ जाता है, जिसको पूजा में कहा है कि—

> सांभलजो मुनि संयम रागे उपशम श्रेणी चढियारे।
> सातावेदना बन्ध करीने, श्रेणी थकी ते पडिया रे॥

(१२) क्षीणकषाय गुणस्थान—कषाय का सर्वथा नाश होने से वीतरागता उत्पन्न होती है परन्तु शेष [illegible] कर्म अभी विद्यमान है, वे क्षीण कषाय [illegible] संसार के

मुख्य कारण मोह का तो यहां नाश हो जाता है किन्तु आत्म प्रदेश परिस्पदन रूप मनोयोग, वचनयोग और काययोग रहने से थोडा बहुत ससार अवशेष रह जाता है।

(१३) सयोगी केवली गुणस्थान—जिन्होंने ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय मोहनीय और अतराय इन चार घातिकर्मों का क्षय करके केवल ज्ञान प्राप्त किया है, और जो योग सहित है। व सयोगी केवली कहे जाते हैं। यहां ज्ञान की परिपूर्णता होती है, पहले कषायों के रहने से ज्ञान में मलिनता तथा अपरिपूर्णता थी लेकिन अब सब का अभाव होने से ज्ञान भी निर्मल और परिपूर्ण हो गया। निर्मल और सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त होने के बाद ही वह आत्मा परमात्मा कहा जाता है, वीतराग सर्वज्ञ और हितोपदेशी होने से सदा आराध्य और साध्य यही कहा गया है।

(१४) अयोगी केवली गुणस्थान—जो केवली भगवान योगों से रहित है वे अयोगी कहे जाते हैं। अयोगी केवली गुणस्थान का काल ह्रस्व अ० इ० उ० ऋ० लृ० इन पाच वर्णों के उच्चारण के काल जितना सूक्ष्म माना है इस स्थान में मन वचन और काया की प्रवृत्ति भी बन्द होकर योग का अभाव होने से ससारदशा का अन्त हो जाता है और आत्मा मुक्त होकर ऊर्ध्वगमन के द्वारा सिद्ध शिला में जाकर सदा के लिये विराजमान हो जाता है।

आत्मा की तीन अवस्था बताई है, बहिरात्मा, अतरात्मा और परमात्मा। १ से ३ गुणस्थान वाला बहिरात्मा, ४ से १२ तक अन्तरात्मा और १३-१४ गुणस्थान वर्ती परमात्मा कहलाता है इन गुणस्थानों द्वारा ही जीव क्रमिक चढता चढता मोक्ष में जा सकता है। वह पुन कदापि नहीं लौटता।

छः द्रव्य—जैन तत्त्व में लोक अलोक में रही हुई जितनी भी वस्तुएँ हैं, उन सब का समावेश छः द्रव्य में किया गया है। जो नाना प्रकार की अवस्था-पर्यायों में परिणत होने पर भी अपने अपने भाव में हीन नहीं होता है उसे द्रव्य कहा है, और वह छः होता है। (१) धर्मास्तिकाय, (२) अधर्मास्तिकाय (३) आकाशास्तिकाय (४) जीवास्तिकाय (५) पुद्गलास्तिकाय और (६) काल।

(१) जीवद्रव्य सब द्रव्यों का ज्ञाता होने से प्रधान कहा है। उसका स्वभाव ज्ञान दर्शन और उपयोग रूप है (२) वर्णगंध रस और स्पर्श ये चार गुण जिस में पाये जाते हों वह पुद्गलास्ति काय है। (३) जो गतिमान जीव और पुद्गल को गमन करने में सहायता करता है वह धर्म द्रव्य है। (४) जो स्थितिमान जीव और पुद्गल के स्थिर रहने में सहकारी होता है वह अधर्म द्रव्य है। (५) जो समस्त द्रव्यों को ठहरने की जगह देता है वह आकाश द्रव्य है। (६) जो द्रव्यों के परिणमन में सब जगह निमित्त बनता है वह काल द्रव्य है।

(१) धर्मास्तिकाय के ५ बोल—(१) द्रव्य से १ द्रव्य (२) क्षेत्र से पूर्ण लोक प्रमाण (३) काल से आदि अन्त रहित (अनादि अनन्त) (४) भाव से वर्ण रस गंध स्पर्श रहित अरूपी अजीवशाश्वत, सर्वव्यापी, और अनंतप्रदेशी है। (५) गुण से चलन स्वभाव, जैसे जल की सहायता से मच्छली चलती फिरती है ठीक वैसे ही जीव और पुद्गल दोनों धर्मास्तिकाय की सहायता से ही चलते हैं।

(२) अधर्मास्तिकाय के ५ बोल—(१) द्रव्य से एक द्रव्य (२) क्षेत्र से पूर्ण लोक प्रमाण (३) काल से अनादि अनंत

(४) भाव से वर्ण गंध रस और स्पर्श रहित अरूपी, अजीवशाश्वत, सर्व व्यापी, असंख्यात प्रदेशी है। (५) गुण से स्थिर स्वभाव, जैसे थके हुए मनुष्य को छाया का सहारा उपयुक्त होता है वैसे ही जीव और पुद्गल के ठहरने में अधर्मास्तिकाय सहायभूत होती है।

(३) आकाशास्तिकाय के ५ बोल—(१) द्रव्य से १ द्रव्य, (२) क्षेत्र से लोकालोक प्रमाण, (३) काल से अनादि अनंत, (४) भाव से वर्ण गंध रस और स्पर्श रहित, अरूपी, अजीव शाश्वत सर्वव्यापी और अनंत प्रदेशी है। (५) गुण से अन्य द्रव्यों को अवकाश देनेवाला है, जैसे भीत में खूंटी और दूध में मिश्री।

(४) काल द्रव्य के ५ बोल—(१) द्रव्य से अनंत द्रव्य में वर्तना है। (२) क्षेत्र से ढाई द्वीप प्रमाण (३) काल से आदि अनंत (४) भाव से वर्ण गंध रस और स्पर्श रहित अरूपी शाश्वत और प्रदेशी है। (५) गुण से पर्यायों का परिवर्तन करना है जैसे कपड़े के लिये कैंची (कातर)।

(५) जीवास्तिकाय के ५ बोल—(१) द्रव्य से अनंत जीव द्रव्य (२) क्षेत्र से पूर्णलोक प्रमाण (३) काल से अनादि अनंत (४) भाव से वर्ण गंध रस और स्पर्श रहित अरूपी शाश्वत है स्व-शरीर अवगाहना प्रमाण, व्याप्त होकर रहने वाला, असंख्य प्रदेशी होता है, (५) गुण से चैतन्य अर्थात् ज्ञानादि से सहित होना है।

(६) पुद्गलास्तिकाय के ५ बोल—(१) द्रव्य से अनंत द्रव्य (२) क्षेत्र से पूर्ण लोक प्रमाण, (३) काल से अनादि अनंत (४) भाव से वर्ण गंध रस और स्पर्श सहित रूपी है अजीव शाश्वत और अनंत प्रदेशी है (५) गुण से गलन सड़न और विध्वंसन स्वभाव माना गया है।

१ द्रव्यों के नाम	परिणामी	जीव	मूर्त्त रूपी	सप्रदेशी	एक अनेक	क्षेत्री क्षेत्र	सक्रिय	नित्य	कारण	कर्त्ता	सर्व गत देशग०	अप्रदेशी
धर्मास्तिकाय	०	०	०	१	१	क्षेत्री	०	१	१	०	देश०	१
अधर्मास्तिकाय	०	०	०	१	१	"	०	१	१	०	देश०	१
आकाशास्तिकाय	०	०	०	१	१	क्षेत्र	०	१	१	०	सर्व०	१
पुद्गलास्तिकाय	०	०	१	१	अनेक	क्षेत्री	१	०	१	०	देश०	१
जीवास्तिकाय	१	१	०	१	"	"	१	०	०	१	देश०	१
काल	०	०	०	०	"	"	०	१	१	०	देश०	०

जीव द्रव्य की अपेक्षा से नित्य है और पर्याय की अपेक्षा से अनित्य माना गया है।

जीव के १४ भेद—

(१) सुक्ष्म एकेन्द्रिय, (२) बादर एकेन्द्रिय (३) बेइन्द्रिय(४) ते इन्द्रिय (५) चउरिन्द्रिय (६) असन्नि पचेन्द्रिय (७) सन्निपचेन्द्रिय ७ पर्याप्ता और ७ अपर्याप्ता कुल १४ भेद हुए।

जीव का विशेष वर्णन यानि ५६६ भेद—

जीव के मुख्य दो भेद, स्थावर और त्रस। स्थावर के पाच भेद पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय वायुकाय, और वनस्पतिकाय, (साधारण और प्रत्येक)। त्रस के चार भेद—बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय पचेन्द्रिय। पचेन्द्रिय के चार भेद —नरक तिर्यंच मनुष्य और देवता।

नारकी के १४ भेद—घमा, वशा, शैला, अजना, रिट्ठा मघा और माघवती, सात पर्याप्ता और सात अपर्याप्ता कुल १४ हुए। पृथ्वी के नीचे सात नरक हैं उनमे रहन वालो को सदैव दु ख ही दु ख भोगना पडता है। १५ परमाधामी उन्हे बहुत कष्ट और सताप देता है। नारकी के शरीर तथा आयुष्य नीचे मुजब है।

(१) घमा नारकी की उ चाई ७॥ धनुष और ६ अगुल। आयुष्य १ सागरोपम।

(२) वशा नारकी की उ चाई १५॥ घ० और १२ अगुल। आयुष्य ३ सागरोपम।

(३) शैला नारकी की उ चाई ३१। धनुष और ० अगुल। आयुष्य ७ सागरोपम।

(४) अजना नारकी की उ चाई ६२॥ धनुष और ० अगुल । आयुष्य १० सागरोपम।
(५) रिट्ठा नारकी की उ चाई १२५ धनुष और ० अगुल । आयुष्य १७ सागरोपम।
(६) मघा नारकी की उ चाइ २५० धनुष और ० अगुल । आयुष्य २२ सागरोपम।
(७) माघवती नारकी की उ चाई ५०० धनुष और ० अगुल । आयुष्य ३३ सागरोपम।

नारकी के प्राण १० होते हैं और नारकी का योनि चार लाख बताई गई है। पहली नरक म नारकों के उत्पन्न होने वाला ३० लाख नरका वासा है। दूसरी म पच्चीशलाख, तीसरी मे १५ लाख, चौथी में १० लाख, पाचवी में तीन लाख, छट्टी में पांच कम १ लाख, और मातवीं में केवल ५ नरकावामा हैं। मबसे बडा नरकावामा ४५ लाख ओजन का पहली नरक म 'सीमतक' नाम का कहा है और १ लाख जोनन का मातवीं नरक में अप्रतिष्ठित' नाम का नरकावासा कहा है बाकी सब इनसे छोटे छोट कहे गय हैं [तत्व तु केवलिनो वदन्ति]

तिर्यंच के ४८ भेद—

एकेन्द्रिय के २२ भेद—पृथ्वीकाय अपकाय, तेउकाय, वायुकाय साधारण वनस्पतिकाय इन पाच के सूक्ष्म और बादर के द्वारा १० हुए और १ प्रत्येक वनस्पतिकाय, ११ पर्याप्ता और ११ अपर्याप्ता कुल २२ भेद हुए।

विगलेन्द्रिय के छ भेद—बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय ये तीन पर्याप्ता और तीन अपर्याप्ता कुल छ हुए।

देवता के १६८ भेद—

भुवनपति के १० भेद—(१) असुरकुमार (२) नागकुमार (३) स्वर्णकुमार, (४) विद्युतकुमार (५) अग्निकुमार (६) द्वीपकुमार (७) उदधिकुमार (८) दिशिकुमार (९) वायुकुमार (१०) और स्तनितकुमार।

व्यंतर के ८ भेद—(१) पिशाच (२) भूत (३) यक्ष (४) राक्षस (५)किन्नर (६) किम्पुरुष (७)महोरग और (८) गन्धर्व

वाणव्यंतर के ८ भेद—(१)अणपन्नी (२) पणपन्नी (३) इसीवादी (४) भूतवादी (५) कन्दित (६) महाकन्दित (७) कोहंड (८) और पतंग।

ज्योतिष के १० भेद—(१) चन्द्र (२) सूर्य (३) ग्रह (४) नक्षत्र और (५) तारा, ये पांच चर और पांच स्थिर १० हुए।

देवलोक के १२ भेद—(१) सौधर्म (२) ईशान (३) सनत् कुमार (४) महेन्द्र (५) ब्रह्म (६) लांतक (७) शुक्र (८) सहस्रार (९) आनत (१०) प्राणत (११) आरण्य और (१२) अच्युत।

परधामी के १५ भेद—(१) अम्ब (२) अबरिष, (३) श्याम (४) सबल (५) रुद्र (६) उपरुद्र (७) काल (८) महाकाल (९) असिपत्र (१०) धनुष (११) कुम्भी (१२) बालु (१३) वैतरणी (१४) खरस्वर और (१५) महाघोष।

कृष्ण वृक्ष काटन चहे, नील ज्यू काटन डाल ।
लघु डाली कापोत उर, पीत सबै फल डाल ॥ २ ॥
पद्म चहे फल पक्व को तोड़ खाऊं सार ।
शुक्ल चहे धरती गिरे, लू पक्के निरधार ॥ ३ ॥
जैसी जिसकी लेश्या, तैसा बांधे कर्म ।
श्री सद्‌गुरु संगति मिले, मन का जावे भर्म ॥ ४ ॥

(१) कृष्णलेश्यावाला जीव फल खाने की इच्छा से जम्बू वृक्ष को मूल से काटने की इच्छा रखता है। (२) नीलवाला जीव उसे स्कन्ध में काटने का इच्छा रखता है। (३) कापोतवाला जीव बड़ी बड़ी शाखाओं को काटने की इच्छा रखता है। (४) तेजोवाला जीव केवल उतनी ही छोटी छोटी शाखाओं को काटना चाहता है कि जिसमें फल लगेहुए हैं। (५) पद्मलेश्यावाला जीव केवल पक्के फल को तोड़कर खानेकी इच्छा रखता है। (६) और शुक्ल लेश्यावाला जीव केवल नीचे पड़े हुए फल को ही खाने की इच्छा रखता है, जैसी लेश्या हो वैसा ही बन्धन पड़ता है सद्‌गुरुओं के द्वारा इस मार्ग को अच्छी तरह श्रवण कर मन के भ्रम को दूर करना चाहिये। इस प्रकार संक्षेप में लेश्या का स्वरूप कहा गया है।

१४ मार्गणा—मार्गणा का मतलब है, अन्वेषण या शोध जीव कौनसी गति में है। उसमें कितनी इन्द्रियां हैं? कौनसी काया है? कौनसा योग है? इत्यादि रूप से जिनके द्वारा जीव का अन्वेषण किया जाता है उनको मार्गणा कहते हैं और वे १४ मार्गणा इस प्रकार की हैं।

(१) गतिमार्गणा—नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति, इनका विशेष वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं।

(३) कापोत लेश्यावाला जीव दूसरे की निन्दा करनेवाला, शोक करनेवाला, भय रखनेवाला, हमेशा रोष रखनेवाला, परनिन्दा और स्वप्रशंसा करनेवाला होता है, और संग्राम में मृत्यु की प्रार्थना करता है और कापोत लेश्या वाला प्राणी मरकर तिर्यंच गति में जाता है।

(४) तेजो लेश्यावाला मनुष्य विद्वान , दयालु, कार्य अकार्य का विचार करनेवाला, विवेकी, लाभ हो चाहे अलाभ हो, फिर भी मित्रता को नहीं तोड़नेवाला होता है तेजो लेश्यावाला जीव शरीर को त्याग कर मनुष्य योनि में उत्पन्न होता है।

(५) पद्मलेश्यावाला मनुष्य सर्वदा, क्षमाशील, त्यागी गुरु और देव की भक्ति करनेवाला, निर्मल चित्तवाला और सदानन्दी होता है। पद्मलेश्या वाला जीव देवलोक में जाता है।

(६) शुक्ल लेश्यावाला जीव राग द्वेष से मुक्त, शोक, निन्दा से रहित, पक्षपात शून्य, भोगों से सर्वदा विरक्त और आत्म चिन्तवन में सदा रहता है। शुक्ल लेश्यावाला जीव इस देह को छोड़कर सदा शाश्वत धाम (मोक्ष) में चला जाता है।

इनमें कृष्ण नील और कापोत ये तीन अशुभ, और शेष तीन शुभ हैं, जीव की भली बुरी अवस्था होने में प्रमुख कारण लेश्या ही है। जैसी जैसी लेश्या होती है वैसी वैसी ही क्रिया होती है। शुभ लेश्या ही जीव को समुन्नत बनाती है।

लेश्याओं के परिणाम ऊपर एक दृष्टान्त दिया गया है .—

कठियारे, षटभाव धर लेन काष्ट को भार।
वन चले भूखे हुए जामन वृक्ष निहार ॥-१॥

कृष्ण वृक्ष काटन चहे, नील ज्यू काटन डाल ।
लघु डाली कापोत उर, पीत सबै फल डाल ॥ २ ॥
पद्म चहे फल पक्व को तोड़ खाऊं मार ।
शुक्ल चहे धरती गिरे, लू पक्के निरधार ॥ ३ ॥
जैसी जिसकी लेश्या, तैसा बांधे कर्म ।
श्री सद्गुरु संगति मिले, मन का जाय भर्म ॥ ४ ॥

(१) कृष्णलेश्यावाला जीव फल खाने की इच्छा से जम्बू वृक्ष को मूल से काटने की इच्छा रखता है। (२) नीलवाला जीव उस स्कन्ध से काटने की इच्छा रखता है। (३) कापोतवाला जीव बड़ी बड़ी शाखाओं को काटने की इच्छा रखता है। (४) तेजोवाला जीव केवल उतनी ही छोटी छोटी शाखाओं को काटना चाहता है कि जिसमें फल लगेहुए हैं। (५) पद्मलेश्यावाला जीव केवल पक्के फल को तोड़कर खानेकी इच्छा रखता है। (६) और शुक्ल लेश्यावाला जीव केवल नीचे पड़े हुए फल को ही खाने की इच्छा रखता है, जैसी लेश्या हो वैसा ही बन्धन पड़ता है सद्गुरुओं के द्वारा इस मार्ग को अच्छी तरह श्रवण कर मन से भ्रम को दूर करना चाहिये। इस प्रकार संक्षेप में लेश्या का स्वरूप कहा गया है।

१४ मार्गणा—मार्गणा का मतलब है, अन्वेषण या शोध जाय कौनसी गति में है। उसमें कितनी इन्द्रियां हैं? कौनसी काया है? कौनसा योग है? इत्यादि रूप में जिनके द्वारा जीव का अन्वेषण किया जाता है उनको मार्गणा कहते हैं और वे १४ मार्गणा इस प्रकार की हैं।

(१) गतिमार्गणा—नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति, इनका विशेष वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं।

(३) कापोत लेश्यावाला जीव दूसरे की निन्दा करनेवाला, शोक करनेवाला, भय रखनेवाला, हमेशा रोष रखनेवाला, परनिन्दा और स्वप्रशंसा करनेवाला होता है, और संग्राम में मृत्यु की प्रार्थना करता है और कापोत लेश्या वाला प्राणी मरकर तिर्यंच गति में जाता है।

(४) तेजो लेश्यावाला मनुष्य विद्वान, दयालु, कार्य अकार्य का विचार करनेवाला, विवेकी, लाभ हो चाहे अलाभ हो, फिर भी मित्रता को नहीं तोड़नेवाला होता है तेजो लेश्यावाला जीव शरीर को त्याग कर मनुष्य योनि में उत्पन्न होता है।

(५) पद्मलेश्यावाला मनुष्य सर्वदा, क्षमाशील, त्यागी गुरु और देव की भक्ति करनेवाला, निर्मल चित्तवाला और सदानन्दी होता है। पद्मलेश्या वाला जीव देवलोक में जाता है।

(६) शुक्ल लेश्यावाला जीव राग द्वेष से मुक्त, शोक, निन्द से रहित, पक्षपात शून्य, भोगों से सर्वदा विरक्त और आत्म चिन्तवन में सदा रहता है। शुक्ल लेश्यावाला जीव इस देह को छोड़कर सदा शाश्वत धाम (मोक्ष) में चला जाता है।

इनमें कृष्ण नील और कापोत ये तीन अशुभ, और शे तीन शुभ हैं, जीव की भली बुरी अवस्था होने में प्रमुख कारण लेश्या ही है। जैसी जैसी लेश्या होती है वैसी वैसी ही क्रिया होत है। शुभ लेश्या ही जीव को समुन्नत बनाती है।

लेश्याओं के परिणाम ऊपर एक दृष्टान्त दिया गया है :—

पथिक छः चले कठियारे, पटमात्र धर लेन काष्ट को भार।
वन चले भूखे हुए जामन वृक्ष निहार ॥ १ ॥

(५) इन्द्रियों की सहायता के बिना आत्मशक्ति से लोका-लोक समस्त वस्तुओं का, उनक त्रिकालवर्ती पर्यायों सहित जो जान लेता है, उसे केवल ज्ञान कहते हैं, दर्पण की भांति समस्त वस्तुओं का प्रतिभास इस केवल ज्ञान म झलकता है।

(८)सयम मार्गणा—व्रतधारण, समितिपालन, कषाय निग्रह, दंडत्याग और इन्द्रियजय इनको सयम कहते हैं। अर्थात् अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, और अपरिग्रह इन पाच महाव्रतों का पालन करना, ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण और व्युत्सर्ग इन पांच समिति को पालना क्रोध मान माया और लोभ इन चार कषायों का निग्रह करना, मन वचन और काया से कृत, कारित तथा अनुमोदित, तीनों प्रकार के दंड का त्याग करना और पचेन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना, इनका नाम सयम कहा गया है।

(९)दर्शन मार्गणा—ज्ञान होने के पूर्व वस्तु का जो प्रतिभास होता है, यानि श्रद्धा उसको दर्शन कहते हैं। इसके भी चार भेद है। चक्षुदर्शन, अचक्षु दर्शन, अवधि दर्शन, और केवल दर्शन

(१) चक्षुरिन्द्रिय से होने वाले मति ज्ञान मे पूर्व जो सामान्य प्रतिभास होता है वह चक्षुदर्शन है। (२) चक्षु के अतिरिक्त अन्य इन्द्रियों द्वारा होने वाले मतिज्ञान से पूर्व जो सामान्य प्रतिभास होता है वह अचक्षु दर्शन। (३) अवधिज्ञान मे पूर्व जो दर्शन होता है उसे अवधिदर्शन कहते हैं। (४) केवल ज्ञान क साथ साथ जो दर्शन होता है वह केवल दर्शन माना गया है।

[१] श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक ही होता है इसलिये उसके पूर्व अलग दर्शन नहीं होता, तथा मन पर्यय ज्ञान होते समय प्रथम मन

मान माया और लोभ। प्रत्याख्यानी क्रोध मान माया और लोभ। सज्वलन क्रोध मान माया और लोभ। हास्य, रति अरति भय शोक और दुगछा, स्त्रीवेद पु वेद और नपु सक वेद कुल २५ प्रकार कषाय का है।

सज्वलन कषाय की स्थिति १५ दिन, प्रत्याख्यानी की चार मास, अप्रत्याख्यानी की बार मास इनसे अधिक समय तक कषाय रहता है तो वह अनन्तानुबन्धी कहा है और वह निश्चय दुर्गति का अधिकारी होता है।

वास्तव में जीवों को जो सुख दुःख मिलता है वह कषाय का ही परिणाम है। प्राय कर नारकी में क्रोध, तिर्यच में माया, मनुष्य मे मान, और देवलोक में लोभ की मात्रा अधिकाधिक होती है।

(७) ज्ञानमार्गणा—ज्ञान पांच प्रकार से होता है (१) मति ज्ञान (२) श्रुतज्ञान (३) अवधिज्ञान (४) मन पर्यवज्ञान (५) केवल।

(१) इन्द्रियों तथा मन स जो ज्ञान होता है उसे मतिज्ञान कहते हैं (२) मतिज्ञान से जाने हुए पदार्थों के विषय में जो विशेष ज्ञान होता है अथवा उसके सम्बन्ध से किसी अन्य पदार्थ का जो ज्ञान होता है वह श्रुत ज्ञान है और वह केवल मन का विषय कहा है, (३) इन्द्रियों की सहायता बिना आत्म शक्ति से द्रव्य क्षेत्र काल और भाव की मर्यादा मे जो रूपी पदार्थ को स्पष्ट जान लेता है उसे अवधिज्ञान कहते हैं।

(४) इन्द्रियों की सहायता के बिना आत्मशक्ति से दूसरे के मन के विषय को जो जान लेता है उसे मन पर्यव ज्ञान कहते हैं।

(१) औपशमिक सम्यक्त्व—अनादिकाल से मिथ्यात्वी जीव नदी पाषाण के न्याय से इष्ट वियोग, अनिष्टसंयोग जनित उदासीन परिणामों से आयुष्य को छोड़ बाकी के सात कर्मों की लम्बी स्थिति की अकाम निर्जरा करते हुए, अन्त कोटाकोटी सागर प्रमाणमात्र स्थिति को रखता है इस स्वाभाविक प्रवृत्ति को यथाप्रवृत्ति करण कहते हैं उसके बाद पहले कभी नहीं हुई ऐसी राग द्वेष की निबिड ग्रंथी के भेदन की क्रिया को करता है इस अपूर्व क्रिया को अपूर्वकरण कहते हैं। बाद अन्त कोटाकोटी सागर की स्थिति से अधिक स्थितिवाले कर्मों को नहीं बांधता है। प्रस्तुत अवस्था से वापिस नहीं लौटता, उस क्रिया को अनिवृत्तिकरण कहते हैं, यहां जो आत्मा में लगे हुए होते हैं उनको भव्य अन्त करण के जरिये हटा कर अन्तर्मुहूर्त मात्र काल तक परम शांति में आत्मा रमण करता है इस शांति के समय सम्यक्त्व मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय, और अनन्तानुबंधी क्रोध, मान माया लोभ मोहनीय को, इन सात प्रकृतियों का उपशांति हो जाती है इस समय के आत्म परिणामों को "औपशमिक सम्यक्त्व" कहते हैं यह सम्यक्त्व सारे जीवन में अधिक से अधिक पांच बार आता है। इसके अनुभव से आये बाद भव्य जीव अधिक से अधिक अर्धपुद्गल परावर्तन काल तक ही संसार में परिभ्रमण करता है उनके बाद तो नियमा मोक्ष का अधिकारी हो जाता है।

(२) क्षायिक सम्यक्त्व—मोहनीय कर्म की सात प्रकृतियों के सम्पूर्ण क्षय होजाने पर आत्मा में जो परिणाम पैदा होता है, उसे क्षायिक सम्यक्त्व कहते हैं। अधिक से अधिक तीन अथवा पांचवे भव में क्षायिक सम्यक्त्व वाला जीव सिद्धि पद को प्राप्त कर लेता है।

(३) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व—मोहनीय कर्म की सात प्रकृति, ३ मोहनीय और अनन्तानुबंधी कषाय की चौकड़ी चार के

में विचार उत्पन्न होता है फिर मन पर्यय ज्ञानी आत्मशक्ति से पर कीय मनोगत भाव को जानता है इसलिये मन पूर्वक होने में इसके पूर्व भी अलग दर्शन नहीं होता, छद्मस्थ को दर्शन पूर्वक ही ज्ञान होता है और सर्वज्ञ का ज्ञान दर्शन दोनों एक ही साथ होते हैं।

(१०) लेश्यामार्गणा—इसका विस्तृत स्वरूप ऊपर लिख चुके हैं।

(११) भव्यत्वमार्गणा—जीव दो प्रकार होते हैं, (१) भव्यत्व (२) और अभव्यत्व। जिसको मोक्षतत्त्व पर रुचि है वह भव्य है और जिसको यह रुचि नहीं है वह अभव्य है। भव्य कभी अभव्य नहीं होता, और अभव्य कभी भव्य नहीं होता, यह स्वतः अनादिकाल से सिद्ध है। जैन सिद्धांत में नव तत्त्व इस प्रकार बताया है (जीव तत्त्व, अजीव, पुण्य पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध, और मोक्ष)। अभव्य जीव ८ तत्त्व मानता है मगर १ मोक्ष को कदापि नहीं मानता।

(१२) सम्यक्त्वमार्गणा—आत्मा को आत्मा, और पर द्रव्य को पर समझना इसी को सम्यक्त्व कहते हैं। समकित का एकडा जीवन में पड़जाने पर यह जीव ज्यादा से ज्यादा अर्धपुद्गल परावर्तन के बाद तो अवश्य मोक्ष में जायगा, इसमें कोई शक नहीं। इसलिये सम्यक्त्व ही सिद्धिका पहला और प्रमुख साधन माना गया है। इसके पाच भेद निम्न प्रकार है।

(१) औपशमिक (२) क्षायिक (३) क्षयोपशमिक (४) वेदक और (५) सास्वादन।

(१) औपशमिक सम्यक्त्व—अनादिकाल से मिथ्यात्वी जीव नग पाषाण के न्याय से इष्ट वियोग, अनिष्टसंयोग जनित उदासीन परिणामों से आयुष्य को छोड बाकी के सात कर्मों की लम्बी स्थिति को अकाम निर्जरा करते हुए अन्त कोटाकोटी सागर प्रमाणमात्र स्थिति को रखता है इस स्वाभाविक प्रवृत्ति को यथाप्रवृत्ति करण कहते हैं उसके बाद पहले कभी नहीं हुई ऐसी राग द्वेष की निबिड ग्रंथी के भेदन की क्रिया को करता है इस अपूर्व क्रिया को अपूर्वकरण कहते हैं। बाद अन्त कोटाकोटी सागर की स्थिति से अधिक स्थितिवाले कर्मों को नहीं बांधता है। प्रस्तुत अवस्था से वापिस नहीं लौटना, उस क्रिया को अनिवृत्तिकरण कहते हैं, यहां जो आत्मा में लगे हुए होते हैं उनको भव्य अन्त करण के जरिये हटा कर अन्तर्मुहूर्त मात्र काल तक परम शान्ति में आत्मा रमण करता है उस शांति के समय सम्यक्त्व मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय, और अनन्तानुबंधी क्रोध, मान माया लोभ मोहनीय को, इन सात प्रकृतियों का उपशांति हो जाती है उस समय के आत्म परिणामों को "औपशमिक सम्यक्त्व" कहते हैं यह सम्यक्त्व सारे जीवन में अधिक से अधिक पांच बार आता है। इसके अनुभव से आये बाद भव्य जीव अधिक से अधिक अर्धपुद्गल परावर्तन काल तक ही संसार में परिभ्रमण करता है उसके बाद तो नियमा मोक्ष का अधिकारी हो जाता है।

(२) क्षायिक सम्यक्त्व—मोहनीय कर्म की सात प्रकृतियों के सम्पूर्ण क्षय होजाने पर आत्मा में जो परिणाम पैदा होता है, उसे क्षायिक सम्यक्त्व कहते हैं। अधिक से अधिक तीन अथवा पांचवे भव में क्षायिक सम्यक्त्व वाला जीव सिद्धि पद को प्राप्त कर लेता है।

(३) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व—मोहनीय कर्म की सात प्रकृति, ३ मोहनीय और अनन्तानुबंधी कषाय की चौकडी चार के

(२) स्यान्नास्ति—यही पदार्थ परद्रव्य, परक्षेत्र की अपेक्षा से नास्तिरूप होने से "स्यान्नास्ति" दूसरा भांगा हुआ।

(३) स्यादस्ति स्यान्नास्ति—सर्वपदार्थ अपनी अपनी अपेक्षा से अस्तिरूप हैं और पर की अपेक्षा से नास्तिरूप होने से स्यादस्ति स्यान्नास्ति कहा गया है।

स्यादवक्तव्य—

(४) पदार्थों का स्वरूप जैसा हो वैसा एकान्त रूप नहीं कहा जाय, कारण कि अस्तिरूप कहे तो नास्तिरूप का अभाव हो जाय, और नास्तिरूप कहे तो अस्ति का अभाव हो जाय जिससे इसका नाम "स्यादवक्तव्य" कहा है।

(५) स्यादस्ति अवक्तव्य—एक समय में सर्वस्व पर्यायों का सद्भाव अस्तिरूप से है और पर पर्यायों का सद्भाव नास्तिरूप है फिरभी दोनों भाव एक साथ नहीं कह सकते हैं क्योंकि अस्तित्व भाव कहे तो नास्तित्व का अभाव हो जाय जिससे स्यादस्ति अवक्तव्य कहा है।

(६) स्यान्नास्ति अवक्तव्य—इसी अर्थात् उपरोक्त प्रकार के एक समय के भावों में से नास्तित्व भाव कहे तो अस्तित्व का अभाव हो जाय, अतः "स्यान्नास्ति अवक्तव्य" कहा है।

(७) स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्य—अस्तित्वभाव कहे तो नास्तित्व का अभाव हो जाय, और नास्तित्वभाव कहे तो अस्तित्व भाव का अभाव हो जाय, और पदार्थ का अस्तित्व और नास्तित्व दोनों भाव एक ही समय में साथ होने पर भी कह नहीं सकते कारण

कि वाणी तो कर्मपुद्गल है जिससे "स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्य" कहा है।

नय सात—

नय सात—प्रत्येक पदार्थ में अनन्त धर्मावस्थाएं रहा हुई हैं, किसी एक अवस्था को लक्ष्य में रख कर बाकी की धर्म अवस्थाओं के प्रति उदासीनता रखते हुए वस्तु स्वरूप प्रतिपादन करनेवाले वाक्य प्रयोग को नय कहते हैं जितने प्रकार से वचन प्रयोग किया जाय उतने ही नय होते हैं, उनको संक्षेप में सात भागों में बांट लिये जाने से सात ही कहेजाते हैं। (१) नैगमनय (२) संग्रहनय (३) व्यवहारभूतनय (४) ऋजुसूत्रनय (५) शब्दनय (६) समभिरूढनय और (७) सर्वभूतनय।

(१) नैगमनय—सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूपवाली इन्द्रिया आगे पर हो चुकी हैं और होनेवाली हैं उस क्रिया को प्रत्यक्ष रूप मान लेना नैगमनय का धर्म है, जैसे महावीर स्वामी निर्वाण कभी हो चुके हैं, पर हम दिवाली के दिन कहते हैं कि आज महावीर का निर्वाण दिन है, भगवान पद्मनाभ स्वामी जो अभी हुए भी नहीं, किन्तु होंगे, उनको तीर्थंकर मान कर हम नमुत्थुणं द्वारा उनकी स्तुति करते हैं।

सूक्ष्मरूप से होती हुई क्रिया को स्थूलरूप से मानलेना जैसे बनारस जाने की इच्छा से चलनेवाले मनुष्य के घर से निकलते ही घरवाले प्रश्न के उत्तर में कहते हैं कि वह बनारस गया। नैगमनय तीनों काल को प्रत्यक्ष करता है, निगम अर्थात निश्चित ज्ञान उससे वचन प्रयोग को नैगम कहते हैं।

(२) सग्रहनय---अलग अलग पदार्थों के इकट्ठे होजाने पर उस समुदाय को एक वाक्य से व्यवहार करना उसे सग्रहनय कहते हैं, जैसे कि सेना, मेला, सभा, बगीचा आदि सग्रहनय के प्रयोग हैं। सग्रहनय वाला जीव एक समय से लगाकर कालचक्र पर्यन्त के माप को काल कहता है।

(३) व्यवहारनय—लोक मान्य अपने धर्म की सिद्धि के लिये सत्य या असत्य वचन प्रवृत्ति का करना उस को व्यवहार नय कहते हैं। जैसे कोई पथिक किसी से पूछता है तो उत्तर में गांव तो आगया, ऐसासर्व मान्य व्यवहार है, वस्तुत गांव नहीं आता है जाता तो है वही, । ऐसे ही पनाला पड़ता है गाय बाध दो इत्यादि असत्य वचन प्रवृत्ति के उदाहरण हैं, सत्य या असत्य वचन प्रवृत्ति के व्यवहार को लोग अपने कार्य सिद्धि पर्यन्त ही मानते हैं इसलिये वह न तो सत्य है और न वह असत्य है यह नय भी तीनों काल के प्रयोग में आता है यह नयवाला रात दिवस मास वर्ष इत्यादि काल तो मानता है मगर अढीद्वीप के बहार नहीं मानता है ।

(४)ऋजुसूत्रनय—भूत और भविष्यत काल के अप्रस्तुत प्रयोग में उदासीनता रखने वाला और वर्तमान के सरल सूचन का जो वचन प्रयोग करता है। वह ऋजुसूत्रनय सार्थक नाम है, जैसे कुम्भार मिट्टी लाता है घड़ा बना कर पकाता है, इत्यादि वर्तमान के वचन प्रयोग ऋजुसूत्रनय के उदाहरण हैं, ऋजुसूत्रनय वाला अतीत अनागत काल को न मान कर केवल वर्तमान काल को ही मानता है।

(५)शब्दनय---पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग रूढशब्दों का यौगिक शब्दों का और मिश्रित शब्दों का यथास्थान १ २ ३

वचनों में प्रयोग करना शब्दनय कहलाता है जैसे पुरुष आता है मनुष्य गाता है यहाँ शब्दनय पुरुष का एक होना सूचित करता है तो मनुष्यों का बहुत्व दिखता है, यह नय अपने अपने यथोचितसमय का स्पर्श करता है, जैसे बालक, युवा, वृद्ध, इन शब्दों से अलग अलग कालकी सूचना की जाती है।

(६)समभिरूढनय—पर्यायवाची नामो में ठीक से अर्थ को स्पष्ट करके वचन प्रयोग करना उसे समभिरूढनय कहते हैं, जैसे कि जा जीतला है, जीतेगा और जीता है उसे जीता कहना ठीक है, इसी तरह समान अर्थ वाले एक ही पदार्थ भिन्न भिन्न पर्यायों का भिन्न भिन्न प्रयोग करना य समभिरूढनय के उदाहरण माने गये हैं।

(७) एवं भूतनय—एक पदार्थ के पर्याय वाची नाम एवं जिस अर्थ से प्रयाग किया हो उसी स्थिति मे ही हो उसे ठीक मानना अन्यथा अनुपयागी मानना उसे एवंभूतनय कहते हैं जैसे तीर्थ की स्थापना करते हो उसी समय तीर्थ कर शब्द का प्रयोग करना अन्यथा अवस्था में नहीं, ऐसे को एवंभूतनय के उदाहरण कहे जाते हैं।

इन सातों का भी "निश्चय और व्यवहार' इन दोनों में समावेश किया जा सकता है निश्चय का ध्येय रखते हुए व्यवहार के आश्रित काम करना चाहिये।

जैन सिद्धान्त के उपरोक्त बताये गये साधन से अतिरिक्त और भी अनेक साधन माने गये हैं, विस्तार के भय से विस्तृत वर्णन न कर संक्षेप से थोडा नाम बता देता हूँ, ध्यान, योग, क्रिया, संस्थान, संहनन, समुद्घात अवगाहना ... बारह भावना वगेरे का खूब विचार किया।

जैन धर्म के साथ राजा महाराजाओं मंत्रीयों वगेरे कैसे सम्बन्ध रखते थे और जैन तीर्थ और पर्व पर भी थोड़ा दृष्टिपात डाल देते हैं। जैन धर्म का कितना और कौन जगह प्रचार था, संक्षेप मे आप को "जैन तीर्थ और पर्व" में पढ़ने को मिलेगा।

जैन तीर्थ और पर्व—

जिससे तिरा जाय, उसका नाम तीर्थ। वैसे तीर्थ जैन समाज के अनेक हैं मगर प्राय शाश्वत और बड़े तीर्थ वर्तमान में दो माने है, जैसे कि हिन्दुओं में पुष्कर और द्वारका मुसलमानों में मक्का मदीना, ठीक वैसे ही जैनों में शत्रुंजय और गढ़ गिरनार माना गया है, जो मशहूर रहने वाले हैं। शत्रुंजय तीर्थ पर तेवीश तीर्थकरों ने चरणारविन्द रखे थे, नेम नाथ भगवान भी आये थे लेकिन ऊपर न चढ़ गिरनार पर लौट गये थे, जहां आप का तीन कल्याणक (दीक्षा, जन्म और मोक्ष) हुआ है, कृष्ण वासुदेव नेमनाथ को वंदनार्थ सर्व परिवार सहित आया था, और अनेक राजकन्याओं के साथ राजीमती ने सहसा वन में दीक्षा स्वीकार की थी।

नमि विनमि, साम्ब प्रद्युम्न, पांच पाडव द्राविड वारि खिल्लजी, रामचन्द्रजी, नारदजी वगेरे अनेक महात्माओं न करोड़ों की सख्या मे शत्रुंजय पर मुक्ति मार्ग में प्रयाण किया था, यहां मूल नायक श्री ऋषभदेव विराजमान है, इस तीर्थ की महिमा जैन अजैन सब में प्रसिद्ध है, कार्तिक पूर्णिमा, चैत्री पूर्णिमा और अक्षय-तृतीया के दिन यहा लाखों यात्री जमा होते हैं। देश विदेश से लाखों यात्री इस तीर्थ पर आकर के अपने जीव को समुज्वल बना जाते है इन तीर्थों की भांति दूसरे प्रसिद्ध तीर्थों का केवल नाम निर्देश कर देता हू।

राजस्थान---केसरियाजी (धुलेवा) उदयपुर, करेडा, दयालसा (कांकरोली) देलवाड़ा, नाथद्वारा, जयपुर, अजमेर, ब्यावर, बीकानेर, बूंदी, कोटा, डूंगरपुर, बासवाडा कानौड, चित्तौड़गढ़, नाडोल, नाडलाई वरकाणा, राणकपुर मुच्छाला महावीर स्वामी, जोधपुर फलोदी ओसिया, कापरडा, मेड़ता, नाकोडा, आरोडा, नाण्डिया, ब्रामणवाडजी, आबू, सिरोही, राता महावीरजी, जैसलमेर, जालोर इत्यादि ।

मालवा---इन्दोर, उज्जैन, रतलाम, मोपावल, अन्तरिक्षजी

गुजरात---अहमदाबाद, पानसर भोयणी, उपरियाला, म्हसाणा, बीसनगर, पाटण पालनपुर, तारगा, ईडर, शंखेश्वर, कम्बोई शेरिसा, कडी करलोल, बडोदरा, सूरत, खभात, नवसारी मलडीया, राधनपुर, डभोई, गोधरा मउडी इत्यादि ।

काठियावाड---शत्रुंजय, गिरनार, कदम्बगिरी, तलाजा, दाठा महुआ, ऊनादीव अजारा, वारआ, मावरकुंडला, प्रभासपाटण, घोघाबन्दर, भावनगर, जामनगर, पोरबन्दर राजकोट, मियाणी, वढवाण, वल्लभीपुर इत्यादि ।

कच्छ---भद्रेश्वर, नलिया, सुथरी, तेरा, जखौ, कोठारा, मुन, कच्छवागड, मांडवी, अन्जार, लाकडिया इत्यादि ।

पूर्वदेश---राजगृही कलकत्ता दिल्ली, पावापुरी, चम्पापुरी, हस्तिनापुर, सम्मेतशिखर शौरिपुर, आगरा बनारस, क्षत्रिय काकन्दी, सिंहपुरी चन्द्रपुरी, कम्पिलपुर

महाराष्ट्र—बम्बई, पूना, सत्तारा, अधेरी, आणा, सोलापुर, कोलापुर नागपुर इत्यादि ।

इत्यादि बड़े बड़े तीर्थ विद्यमान हैं, ससार में एक कहावत प्रचलित है कि १४४४ स्तभ से सम्पन्न राणकपुर की विशालता, तारगा की उचाई और आबू की कोतरणी हिन्दुस्तान भर में कहीं नहीं मिलेगी। आबू के प्रसिद्ध जिनालयों का निर्माण विमलशाह, तथा वस्तुपाल तेजपाल महामन्त्रीश्वर क हाथ से हुआ है, पहले के जमाने में राजा महाराजाओं के हाथ में जैन धर्म की नाव थी जिससे जैनों के तीर्थ अत्यंत प्रसिद्धि पाये थे। अनेक राजाओं ने जैन मन्दिर के निर्माण में पूर्ण सहयोग दिया था इतना ही नहीं - अपितु राजाओं ने लाखों जैन मन्दिर बनवाये थे। क्योंकि पहले जैनाचार्यों का राजाओं और मन्त्रियों पर पूर्ण वर्चस्व था और वे गुरुरूप आचार्यों को मानते थे उनके पड़े बोल को झीलने में अपने को कृतकृत्य मानते थे।

बप्पभट्टसूरि के उपदेश से आमराजा ने गोपगिरी पर जैन मन्दिर बनवाया था। आर्य सुहस्तिसूरि के उपदेश से सम्प्रतिराजा ने लाखों जैन मन्दिर और मूर्तियें बनवाई थीं, सिद्धसेन दिवाकर के उपदेश से जैन धर्म का प्रचार विक्रमादित्य ने किया था जिसके नाम का सम्वत् आज चलता है। हिमचन्द्राचार्य के उपदेश से कुमारपाल ने अठारह देश में अमारि पटह तथा सैंकडों जैन मन्दिर और मूर्तियें बनवाई थी जिसका नमूना तारगा देखिये। विजयहीर सूरिजी के उपदेश से अकबर ने जैन धर्म रूप दया बेलडी को खूब सिंचन की। जीववध सर्वथा छ माम बन्द करवाया राजा सम्प्रति ने तो अनार्य-देशों में भी जैन धर्म का जोरशोर प्रचार किया था। जिसका सुफल है कि ,बिहार - प्रदेश, ,औरिसा ,प्रदेश, उत्तर भारत ग्वालियर, गुजरात, काठियावाड, दक्षिण भारत, मेवाड, मारवाड

मगध, बंग, वंग वगैरे प्रदेशों में जैन धर्म विस्तार पासका, और आज भी जैन धर्म की वाड़ी उस २ प्रान्तों में हरीभरी है मुगलशाही राज्य में जैन धर्म के साहित्य और कितने ही मन्दिर नष्ट हो गये।

अकबर के द्वारा जैन तीर्थों पर होने वाली हिंसा को विजय हीरसूरिजी ने सर्वथा बंध करवाई, और उनसे पट्टे लिखवाये थे। वे आज भी कितने ही मौजूद हैं काल बल के कारण राजाओं ने जैन धर्म को छोड़ दिया जिससे जैन तीर्थ उन्नति के बदले अवनति की तरफ जा रहे हैं।

पहले के बड़े बड़े मन्त्रियों ने जैन धर्म का प्रचार करने में प्रयत्न भरसक किया था जिस से कि आज के विषय समय में भी जैनों के ३६ हजार मन्दिर उन पुरुषों की मुक साक्षी दे रहे हैं पहले के कितने ही राजा लोग नूतन नगर अथवा गढ बनाते थे तब सर्व प्रथम जैन मन्दिर का पाया भरवाते थे। मेवाड़ के उदयपुर शहर को बसानेवाले महाराणा प्रताप ने भी जैन मन्दिर का निर्माण किया और उनका मन्त्री दानवीर भामाशाह के द्वारा जैन धर्म पर प्रताप को अनुराग उत्पन्न हुआ था इससे अनुमान कीजिये कि पहले के राजाओं में जैन धर्म और जैन तीर्थ—मन्दिर के प्रति कितनी अटूट श्रद्धा थी। यह पाठक ही सोचें और समझें।

जैन पर्व

जैन पर्व—पर्व तो जैनों के अनेक हैं, उसे छ अट्ठाई भी मानी गई है कार्तिक अट्ठाई, फाल्गुन अट्ठाई, अषाढ अट्ठाई, चैत्री ओली अट्ठाई, आश्विन ओली की अट्ठाई, और पर्वाधिराज पर्युषण की अट्ठाई, इस प्रकार छ में से दो ओली की तो

जिनकी महती कृपा का यह सुफल है कि मैंने यह लिखने का साहस किया उस शक्ति सम्पन्न सरस्वती देवी की मैं परम भक्ति से स्तुति करता हूँ।

जिन्होंने मुझे संसार का त्याग, और तप, त्याग का मार्ग बताया, कीचड़ में फंसते हुए को उबारा, सद्ज्ञान द्वारा आत्म कल्याण का सरल उपाय बताया, और मोक्ष मार्ग पर चलने का आदेश दिया उन सद् गुरुदेव को सादर लाखों बार वंदन करता हूँ।

भारत गगन में उस समय फिर वह एक झंडा उड़ा,
जिसके तले आनन्द से आधा जगत आकर जुड़ा।
वह बौद्धकालिक सभ्यता है विश्व भर में छा रही,
अब भी जिसे अवलोकने को भूमि खादी जा रही॥

वर्णे विदेशी यात्रियों ने उस समय जो क्या,
पढ़कर तथा सुनकर उसे किसने नहीं विस्मय किया।
बनते न विद्या प्राप्त कर ही वे यहां बुध वर्य थे,
श्री भी यहां की देख कर करते महा आश्चर्य थे॥

बौद्ध धर्म की स्थापना—

हिन्दु धर्म में २४ अवतारों का होना बताया है, मुसलमानों मे २४ पयगम्बरों का होना लिखा है, जैनों के २४ तीर्थ करों का होना नियत है, ठीक उसी तरह बौद्ध धर्म में २४ अवतार हुए बताते हैं, इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि बौद्ध धर्म की स्थापना गौतम बुद्ध के पहले हुई थी, और गौतम बुद्ध के पहले २३ बुद्ध हुए लेकिन उन बुद्धों की ख्याति विश्व में कम दिखती है और उनके नाम भी वर्तमान में ठीकतया उपलब्ध नहीं हो रहे हैं, परन्तु इतना तो अवश्य

मानता ही रहा कि बौद्ध धर्म की स्थापना गौतम बुद्ध ने नहीं की बल्कि पूर्व के अवतारों ने की, और गौतम बुद्ध महावीर की भांति अन्तिम प्रचारक हुए।

इस में कोई संशय नहीं कि जैनों के महावीर के पूर्व जो तीर्थंकर हुए मगर महावीर की तरह ज्यादा प्रसिद्ध नहीं हुए थे इसी तरह बौद्ध धर्म के २३ अवतार ज्यादा ख्याति में न आने के हेतु सम्भव है कि इन के नाम पुस्तक के पन्ने में ही रह गये हों लेकिन गौतम बुद्ध के पहले बौद्ध धर्म था यह तो निर्विवाद इतिहास के बल पर सिद्ध हो जाता है, और गौतम बुद्ध अंतिम प्रचारक हुए थे अपने यह मानना ही न्याय संगत होगा। अत अंतिम प्रचारक गौतम बुद्ध पर ही हम आगे विचार करेंगे।

गौतम बुद्ध की जीवन कहानी—

जन्म—विश्वविख्यात भरतचक्रवर्ती के नाम से पड़े हुए नाम वाली भारत की भूमि पर नेपाल देश के दक्षिण भाग में हिमालय की तलेटी में कपिलवस्तु नामक एक नगर था वह काशीपुरी से उत्तर दिशा में १३० माईल की दूरी पर रोहिणी नदी के काठे पर बसा हुआ था' इक्ष्वाकुवंशीय शुद्धोदन नामक राजा वहां राज्य करता था, शुद्धोदन और उनके सामन्त वर्ग शाक्यकुल के कहलाते थे, वहां के लोग खेती बाड़ी का धंधा किया करते थे बड़े बड़े जंगलों को साफ कर धान्य पैदा हो वैसी जमीन बनाते थे नेपाल की तराई के जंगलों को भी साफ कर दिया था, राजा भी खेती के काम में भाग लेता रहता जिस से प्रजा का उत्साह अधिक बढ़ जाता था।

राजा शुद्धोदन धार्मिक वृत्ति वाला, उदार, पवित्राशयवाला और [illegible] था और उस समय कपिल वस्तु नगर की

लाली अपूर्व थी, कपिलवस्तु के एक तरफ मगध देश, और दूसरी तरफ कोशल देश था, उन देशों के राजाओं में बार बार लड़ाईयाँ होती थीं लेकिन शुद्धोदन तटस्थ वृत्ति से व्यवहार करता था जिससे इनके नगर की समृद्धि शोभा अधिक अधिक बढने लगी।

"रोहिणी नदी का मालिक कौन ?" इसके बारे में शाक्य लोकों और कालिय लोकों में भयङ्कर कभी कभी युद्ध छिड जाता था, एक बार बडा भारी युद्ध हुआ मगर शुद्धोदन राजा ने दोनों को समझा बुझा कर संग्राम बन्द करवाया, परस्पर प्रेम के सूत में बांध दिये जो कि कभी लड़ाई पैदा ही न हो। यह बात ई० स० ६०० के पूर्व की मानी जाती है। उस समय देवदहन के राजा ने अपनी दोनों कन्याओं का विवाह शुद्धोदन राजा के साथ करवाया, एक का नाम था महामाया और दूसरी का गौतमी।

एक तरफ दोनों सगी बहनें और दूसरी तरफ शौक्य होने पर भी परस्पर प्रेम से संसार चला रही थी दोनों प्रकृति की विनम्र एवं मायालु थी, राजा भी दोनों आंख की भांति उन से बर्ताव करता था एक बार का प्रसंग है कि—

चार दिशा के चार देवता ने मेरे पल्यक को उठा कर हिमालय पर ले गये। शालवृक्ष के नीचे उन देवों की स्त्रियों ने सुगन्धी पदार्थों से स्नान करवाया, आभूषण पहिना कर स्वर्ण विमान के एक पल्यक पर पूर्व दिशा में माथा रख कर मुझे शयन करवाया, इतने में एक सफेद हाथी सूंढ में कमल लेकर आया, पल्यक के तीन प्रदक्षिणा देकर के मेरे शरीर में वह प्रवेश कर गया इस प्रकार के स्वप्न को महामाया राणी ने देख राजा से निवेदन किया,

उषा के समय राजा ने स्वप्न पाठकों को सब घटना कह सुनाई और फल क्या होगा? यह भी निवेदन किया, परस्पर विचार

विनिमय के अन्त में एक ने कहा राजन्! यह स्वप्न सूचित करता है कि आप के घर कोई महापुरुष का जन्म होगा यदि वह गृहस्थ में रहा तो चक्रवर्ती बनेगा, और सन्यासी बना तो बुद्ध होकर के जगत का कल्याण करेगा।

स्वप्न के फल को सुन सब खुश हो गये, स्वप्न पाठकों को पारितोपिक दे रवाना किये, उसी दिन मायादेवी ने गर्भ को धारण किया, राणी की इच्छा पियर जाने की होने पर राजा ने अच्छे मुहूर्त्त में बड़े लश्कर के साथ रवाना की।

कपिल वस्तु और देवदहन नगर के मध्यम में लुविनी नामक एक मनोहर उपवन था। वहां तक गये और सब को इच्छा विश्राम लेन की हुई, पड़ाव डाल दिये मायारानी बगीचे में घूमने लगी शालवृक्ष के नीचे विश्राम के लिये बैठी इतने में गर्भ की व्यथा होन लगी दासियों न वहा पड़दा लगा दिये मायादेवी ने शालवृक्ष क नीचे हा शान्ति से पुत्र को जन्म दिया, शालवृक्ष ने पुष्पों की वृष्टि की, मायादेवी को खूब नीन्द आगई, शुद्धोदन के कानों में यह समाचार पहुँच गये चतुरंगी सेना के साथ वहां आया और शानदार स्वागत पूर्वक वापस राजधानी में लेगया।

राजाने खूब महोत्सव मनाया, कैदियों को छोड़ दिये, एक बार राजा पुत्र युक्त राजसभा में बैठा था आठ विद्वानों की दृष्टि बालक पर पड़ी, सात विद्वानों का तो एक ही मत रहा कि गृहस्थावस्था में रहा तो चक्रवती, और सन्यास में रहा तो बुद्ध बनेगा, मगर कौडिन्य नामक विद्वान ने तो स्पष्ट कह दिया कि यह अवश्य मेव बुद्ध बनेगा, इस में जरा भी फर्क नहीं।

माता पिता के सब मनोरथ पुत्र के जन्म से सिद्ध हो गये, जिससे उनका नाम रखा सिद्धार्थ। किन्तु मायादेवी तो सातवें दिन

ही स्वर्ग चली गई। सिद्धार्थ का लालन पालन मायादेवी की छोटी बहिन गौतमी ने सगी मां की भांति किया था।

बचपन—जब सिद्धार्थ सात वर्ष का हुआ तब राजा ने उसे उपाध्याय जी के पास पठनार्थ भेजा, उपाध्याय ने पाटी पर मन्त्र लिख दिया, मगर सिद्धार्थ ने उसी मन्त्र को अलग अलग लिपि और भाषा में लिख बताया, गुरुजी ने एक दो तीन चार संख्या सिखाना शुरु किया, मगर सिद्धार्थ तो हजार दश हजार लाख दश लाख आदि धड़ा धड़ बोल गया, यह देख गुरु ने पूछा तुमको शब्द और संख्या तो आती है अत में वजन का कोष्टक बताता हूं. सिद्धार्थ ने कहा गुरुदेव ? जितना मुझे आता है उतना तो मैं बोल जाउं आगे आप पढाना ऐसा कह कर आप बोलने लगा, दश परमाणु का एक सूक्ष्म बनता है, १० सूक्ष्म का १ त्रसरेणु बनता है, सात त्रसरेणु का सूर्य के प्रकाश म उड़ता हुआ १ रजकण बनता है ऐसे सात कण की उदर की मूछ के बाल का अग्रभाग होता है, ऐसे १० बाल से १ लीख बनती है १० लीख से १ जू बनती है, १० जू से १ बाजरी के दाणा जितना वजन होता है, उस में गद्दियु पावालु, पाली मण खलशी, हारा इस प्रकार वजन होता है, इसी तरह लम्बाई में हाथ धनुष भाला, गाउ योचन वगैरे का भी माप हो जाता है, साथ में एक जोजन के कितने परमाणु होते हैं यह सूक्ष्म में सूक्ष्म भी गणत्री बतादी।

यह सुन गुरुजी तो आश्चर्य मे पड गये, उठ खडे हुए और सिद्धार्थ के चरणों में ढल पडे, और कहा आप तो बड़े विद्वान् हैं, आप पढने लायक नहीं बल्कि पढाने योग्य हो। सिद्धार्थ पढ कर राजधानी में लौट आया, और पिताजी को कहा घोड़े सवार, तलवार, भाला वगैरे का कला मैं अपने आप सीखूंगा समय पर आप मेरी परीक्षा करें।

खेतीबाड़ी के काम में लोग लग गये एक बार सिद्धार्थ भी खेत की तरफ गया अनेक लोग नाच कूद करते हुए यमलोत्सव मनाने लगे, कुमार एक जामून के नीचे खड़ा खड़ा यह दृश्य देख सोचने लगा, ये लोग कितने निर्दया हैं बिचारे भोले भोले बलदों को कितने मार रहे हैं? लोगों के जीवन को सुधारने का मार्ग मुझे ढूंढना चाहिये।

सुनसान कुमार को खड़ा देख शुद्धोदन ने कहा बेटा? आनन्द उत्सव में तू इस तरह क्यों खड़ा है, उत्तर में सिद्धार्थ ने कहा, पिताजी मैं इस में सुख के बदले महान् दुःख देख रहा हूँ। मुझे इसमें आनन्द नहीं है। ये लोग कितने निर्दयी होकर मारपीट कर रहे हैं।

ये वचन सुन शुद्धोदन बड़ा दुःखी हुआ विद्वानों को बुलाये प्रश्न के प्रत्युत्तर में विद्वान ने कहा सिद्धार्थ का हृदय विरक्त है, और इनके सामने कोई दुःखी न निकले इसका पूरा ख्याल रखें, वरना एक दिन संसार का परित्याग कर सन्यासी बन जायगा।

एकबार सिद्धार्थ महल के मैदान में बैठा था इतने में करुण चित्कारी करता हुआ एक हंस आकाश से नीचे गिर पड़ा, सिद्धार्थ ने उसे हाथ में लिया, और उसके शरीर पर लगे हुए तीर को खेंच निकाला, और वस्त्र फाड़ पट्टा बांध दिया इतने में उनके काका का पुत्र देवदत्त दौड़ता हुआ आया और बोल उठा, हंस मेरा है मुझे देदो।

सिद्धार्थ ने गंभीर एवं मार्मिक शब्दों में कहा, भाई। यह कितना घायल होगया है, तुझे बाण चलाते हुए शर्म नहीं आई? तुम्हारा धर्म क्षत्रियों के साथ युद्ध करने का है न कि बिचारे भोले

जीव के साथ खिलवाड़ करने का, इस पर विवाद खड़ा हो गया, आखिर राजसभा में पहुंच अपनी अपनी बात कह सुनाई। सब विचार में उतर गये कि इनका फैसला कैसे दिया जाय? दीर्घ विचार के अंत में अमितऋषि ने कहा राजन? प्राणी मात्र का जीवन ईश्वर ने दिया है तो उसको मारने का मानव को अधिकार नहीं है, हम वध के कारण देवदत्त अपराधी है, मारनेवाले से जीवानेवाला सदा बड़ा मानागया है तो हंस के ऊपर सिद्धार्थ का अधिकार है इसे दियाजाय। इस निर्णय को सुन सभाने सहर्ष स्वीकार किया, सारे नगर में सिद्धार्थ का दया की प्रशंसा होने लगी।

, विवाह—एकबार राजा शुद्धोदन ने कहा सिद्धार्थ? मैं अब वृद्ध हो चुका हूं यह राज्य तुझे सम्भालना होगा, इसलिये कुछ युद्ध की कला सीखनी चाहिये जिससे दुष्ट राजाओं से तू अपना बचाव कर सकेगा, केवल साधु की भांति ध्यान में बैठे रहना क्षत्रियों के लिये शोभास्पद नहीं है।

प्रत्युतर में सिद्धार्थ ने कहा, पूज्यपिता श्री? प्रजा का रक्षण और न्यायपूर्वक राज्य चलाना मेरा धर्म है मैं यह अच्छी तरह समझ रहा हूँ, युद्ध के लिये आप आज्ञा दें उसी के साथ तैयार हूँ, और आप परीक्षा कीजिये। इस पर शुद्धोदन राजा बड़ा प्रसन्न हुआ सारे देश के योद्धाओं को युद्ध के लिये आमंत्रण शुद्धोदन ने दिया, राजा शुद्धोदन की मायादेवी राणी का भाई दण्डपाणी की पुत्री के यह नियम था कि युद्ध हरिफाई में जो जीते वह मेरा वर हो, यह भी मौका ठीक उपस्थित हो गया।

राजा के आमन्त्रण पर अनेक राजकुमार वगैरह आ गये, यशोधरा भी पालकी में बैठ मन्डप में आ गई, धनुर्विद्या में देवदत्त, अश्वविद्या में अर्जुन, तलवार में नन्द, जैसा कोई नहीं है, सिद्धार्थ

वा इनसे पराजय हो गया तो मेरी प्रतिष्ठा बरबाद हो जायगी इस प्रकार राजा शुद्धोदन संकल्प विकल्प उस समय मंडप में करने लगा सिद्धार्थ उनके भावों को समझ कहने लगा आप जरा भी चिन्ता न करें, सबके सामने मेरा विजय होगी और यशोधरा मुझे वर वरेगी, आप घबराईये नहीं।

सबसे प्रथम नन्दकुमार ने धनुषबाण चढाया और दूर पड़े हुए ढोल के निशाना मार दिया, अर्जुन ने नन्द से भी ज्यादा दूर रहकर निशाना लगा दिया उसी समय इनसे भी ज्यादा दूर खडा रहकर सिद्धार्थ ने ढोल को बींध दिया, सबने जयनाद किया। इसी प्रकार तलवार अश्व विद्या आदि सबमें सिद्धार्थ जीत गया उसी समय यशोधरा ने वरमाला सिद्धार्थ के गले में डालदी, बडी धूमधाम पूर्वक वहां ही लग्नविधि की गई, एक दूसरे के प्रेमपाश म बन्ध गये।

सिद्धार्थ के लिये राजा ने सुखमाहेबी के अनेक साधन बनवाये मगर सिद्धार्थ का आत्मबल संसार के अभेद्य किलाओं को तोडने का उपाय ढूंढ रहा था।

अपसरा तुल्य गुणवती रूपवती प्रेमवती यशोधरा को प्राप्त करने पर भी सिद्धार्थ का मन उसमें आसक्ति के बदले विरक्त ही रहता था सिद्धार्थ वृद्ध रोगी अथवा मृत्यु प्राप्त मुर्दे को देख अत्यन्त दुःखी बनजाता था और इन दुःख से मानव को बचाने की शोध-खोज करने लगा।

एक दिन अपनी बात अपने पिताजी को कह सुनाई, पिताजी! जन्म जरा, व्याधि और मरण इन चार प्रकार के दुःखों से जगत को बचाने का उपाय शोधन के लिये संसार त्याग कर साधु बनने का विचार करता हूं यह सुन पिताजी को बड़ा दुःख हुआ, अनेक प्रकार से उसे समझाने लगे।

इधर सिद्धार्थ की पत्नी यशोधरा ने एक पुत्र को जन्म दिया, उस समय दासी सिद्धार्थ को बधाई देन गई, पुत्र के जन्म का समाचार सुन सिद्धार्थ के मुख से निकल पड़ा लो यह "राहु,, पैदा हो गया, इस पर राजा शुद्धोदन ने उस का नाम 'राहुल, ही रख दिया,

सिद्धार्थ ने राजा से कहा पिताजी ? मैं संसार का त्याग करता हूँ तो सुख के लिये ही, दु ख के लिये नहीं। यदि चार बातों का भार आप माथे पर लें तो मैं ससार नहीं छोड़ु (१) बिना मरण का जीवन (२) आरोग्य जीवन (३) वृद्धावस्था रहित यौवन (४) और अविनाशी पदार्थ। ऐसा सुखी जीवन हो।

शुद्धोदन ने कहा बेटा ? ये बातें न तो बनी और न बनेगी, क्योंकि यह घटमाल निरंतर चालू है, सिद्धार्थ ने कहा पिताजी ! इस लिये तो मैं कहता हूं कि जगत को दु ख से मैं बचाऊगा, जलते हुए ससार में रहने की मेरी इच्छा नहीं है नाशवत पदार्थों से मोह करना मूर्खता है, जन्म मरण के बन्धन से मैं भी छुटु गा और जगत को सन्मार्ग बताऊगा। अत आज्ञा दीजिये जिससे मेरा मार्ग सरल हो, ऐसा कह कर सिद्धार्थ अपने महल की तरफ लौट गया,

एक बार यशोधरा को स्वप्न आया, वह इस प्रकार सिद्धार्थ को कह सुनाया अनेक देवों ने कपिल वस्तु नगर को घेर लिया और जूने झंडा को उतार नवान स्थापन किया, उस में हीरे पन्ने माणक मोती जड़े हुए थे उसमें स ध्वनि निकलती थी कि समय आ गया, समय आ गया,यह देख यशोधरा जबक उठी, सिद्धार्थ ने आश्वासन दिया, घबराने की जरूरत नहीं। फिर भी यशोधरा ने निवेदन किया, स्वामिन् मुझे इससे यह भय लगता है कि कदाच आप मुझे छोड कहीं चले जायेंगे।

यदि मैं चला जाउगा तो जगत का तुम्हारा और सब का कल्याण हो सकेगा इसलिये तुम चिन्ता न करो 'राहुल, तेरा बजाना है इस को शिक्षा से कला कुशल बनाना, तुम्हारी यह सहायता और सेवा करेगा।

संसार त्याग —राजा और प्रजा, राणा और दासी, नौकर और चाकर, यशोधरा और राहुल, सब निद्रादेवी की गोद में लोट पोट हो रहे थे। केवल सिद्धार्थ ध्यानस्थ बैठ आगम्य मार्ग पर विचार कर रहा था, वास्तव में सत्य है कि यशोधरा को स्वप्न मुझे जगाने के लिये ही आया है। बिना कुछ कहे ही निकल जाना चाहिये अभी मैं जवान हू सत्य का शोध कर सकू गा ऐसा सोच सिद्धार्थ पल्यक पर से खड़ा हुआ दरवाजे के बहार सोया हुआ अपना विश्वासपात्र अनुचर सारथी छन्न को जगाया,, वह भी खड़ा होते ही बोला इस समय क्या आदेश है फरमाईये, सिद्धार्थ ने कहा पवन वेग एक घोड़े की जरूरत है, जल्दी तैयारी करो।

छन्न बिना कुछ प्रश्न किये ही अश्वशाला की तरफ रवाना हो गया, सिद्धार्थ कपड़े पहन तैयार हो गया, दरवाजे पर गया और यशोधरा तथा राहुल के प्रेम ने पुन खेंचा वापस अंदर आ भरनिन्द्रा में पड़े हुए दोनों को बार बार देख जल्दी जा घोड़े पर बैठ गया मन में यह संकल्प कर दिया कि जब मुझे सत्य ज्ञान पैदा होगा, और दुःख नाश करने का उपाय जड़ जायगा तब पुन कुटुम्ब और कपिल वस्तु नगर का दर्शन करु गा।

राजगृही का तरफ घोड़े को रवाना किया, रात और दिन चलते हुए तीन दिन के बाद अनोमानाम की नदी की तट पर पहुँच गये, सिद्धार्थ ने छन्न को कहा भाई, अब तुम यह घोड़ा और मेरा आभूषण ले जाओ, यह शब्द सुन छन्न चौधारा आंसुओं से रोने लगा

क्योंकि वह परमभक्त था आखिर समझा बुझा कर उसे वापस रवाना किया, मगर कथक नाम का घोडा तो सिद्धार्थ के विरह में सदा के लिये सो गया, सिद्धार्थ ने माथा मुंडा लिया और राजवेष का परित्याग कर भिक्षुकवेष को धारण कर लिया।

भिक्षु जीवन मे अनेक घटनाएं

साधुवेष पहिनकर सिद्धार्थ राजगृह की तरफ रवाना होगया राजगृही के समीप गंगा नदी की छोटी छोटी पहाडियों पर अनेक छोटे बडे साधु महात्मा आश्रम में रहते थे वहां का वातावरण तपो मय था यह भी वहां पहुँच गया।

पांडव पर्वत उपर से नीचे उतर सिद्धार्थ भिक्षा के लिये राजगृही में गया, इनका सुन्दर स्वरूप देख लोगों ने खूब भक्ति की, अनेक प्रकार की रसवती से पात्र भरगया, सिद्धार्थ भीक्षा ले वापस पर्वत पर लौटगया उस समय मगधदेश का राजा बिंबिसार राज-मार्ग पर जा रहा था, इस नूतन साधु को देख विचार में पड़ गया कर्मचारी के द्वारा पता लगाया कि कोई विदेश से नवीन साधु पांडव पर्वत पर आया है।

कर्मचारी के कहने से राजा बिंबिसार वहां गया, प्रणाम कर राजा ने कहा मालूम होता है आप कोई राजकुमार हैं, तो फरमा-इये कि आप किस देश और किस राजकुल के कहे जाते हैं।

भिक्षुक ने उत्तर दिया आपका अनुमान सच्चा है, मैं कपिल वस्तु के राजा शुद्धोदन का पुत्र सिद्धार्थ हूँ और जन्म जरा व्याधि और मरण इन चार प्रकार के भयंकर दुःखो को सर्वथा नाबूद करने का प्रयत्न करता हूँ, और सत्यज्ञान पैदा होने पर जगत को कल्याण

का मार्ग बताने की भावना करता हूँ, और इसी के लिये यह वेष पहना है।

विंबिसार ने कहा आपके विचार बड़े सुन्दर हैं, मेरी आप से एक प्रार्थना है कि जब आपको सत्य ज्ञान पैदा हो जाय तब यहा पधारें और मेरे उपवन में आप आश्रम बनाकर के रहें, सिद्धार्थ ने कहा-यो ज्ञान मिलने पर अवश्य आपकी बात को मजूर करूगा, राजा लौट गया।

राजगृही के समीप आलारकालाम नाम का एक प्रसिद्ध एव योग्यनिष्ठ तपस्वी रहता था, जिसकी कीर्ति चारों ओर पसरी हुई थी, सिद्धार्थ भी उनके पास गया, और अपना परिचय के अन्त में कहा महाराज! आपका शिष्य बन आया हू मुझे मोक्षप्राप्ति का उपाय बताईये, आलारकालाम भी सिद्धार्थ जैसे विनीत और विद्वान शिष्य को पा बड़ा प्रसन्न हुआ, जो भी अपने पास विद्या थी सब सिद्धार्थ को देदी, मगर सिद्धार्थ को सतोष न हुआ, कहा मुझे साक्षात्कार का मार्ग बताईये। शिक्षक ने कहा मेरे शास्त्र म समाधि की सात श्रेणिया बताई हैं, सबसे पहले वह कला व्याधान करनी चाहिये जिससे आगे बढा जा सके।

सिद्धार्थ ने कहा-यह तो मैं जानता हूँ मगर चढना कैसे यह बताओ? आलारकालाम ने वितर्क, विचार, प्रीति, सुख और एकाग्रता वगेरे का विस्तृत वर्णन कर सुनाया। सिद्धार्थ ने कहा यह तो मैंने कर लिया है परीक्षा करो और आगे मार्ग बताओ, तब गुरु न कहा-जितना मुझे ज्ञान था वह सब तुझे देदिया अब तुम भी एक बड़े आचार्य बन गये हो, कहीं पर भी आश्रम लगाकर शिष्य परिवार सहित ध्यान किया करो।

सिद्धार्थ को समान पद मिल चुका था, फिर भी इसे सतोष न था, वह तो दिव्य ज्ञान पैदा हो इसकी धुन में था।

एक बार कोई भरवाड़ बकरे का झुंड लेजारहा था, सिद्धार्थ के प्रत्युत्तर में भरवाड ने कहा राजा ने आज महान् यज्ञ प्रारम्भ किया है उसमें इन सब की आहुति दी जायगी। भरवाड के पीछे पीछे सिद्धार्थ भी चल पड़ा, राजमहल के मैदान में हजारों नर नारी को देख सिद्धार्थ चुपचाप खडा रह गया।

यज्ञकार ने आदेश दिया कि बकरे का होम करो इस पर सिद्धार्थ खडा हुआ और बोला, ठहरो, ठहरो, और ठहरो सब चौकन्ने हो गये, सिद्धार्थ की और देखने लगे। सिद्धार्थ ने कहा, बन्धुओं! यह आपका कर्त्तव्य बड़ा भयकर है, इससे आप को भयानक नरक का दुःख भोगना पड़ेगा, हिंसा से स्वर्ग और अपवर्ग स्वप्न में भी नहीं मिलेगा, देवों के नाम होम करना कितनी मूर्खता है सब को जीने का अधिकार है इन विचारे भोले पशुओं को मारते हुए शर्म नहीं आती? जगत में दया और प्रेम का प्रचार करो जिससे सब का उद्धार होगा स्वर्ग और अपवर्ग का सुख मिल सकेगा।

इस उपदेश से सब के चित्त द्रवीभूत हो गये, बिंबिसार राजा पर अमीम प्रभाव पडा, सब ने हिंसा छोड दी, घेटाओं को वापस रवाना कर दिये, नगर में अहिंसा की जयध्वनि गूंज उठी।

सिद्धार्थ वहा से निकल उद्रक रामपुत्र के आश्रम में गया। उद्रक ऋषि ने नूतन भिक्षुक का बडा सत्कार किया, परिचय के पश्चात् कितने ही समाधि के श्रेष्ठ मार्ग बताये, फिर भी सिद्धार्थ को पूर्ण सन्तोष नहीं हुआ सो नहीं हुआ।

सिद्धार्थ यहा से भी चल घरा, ऊरुवेला नदी में मयकर तप तपने लगा, सैंकडों लोग तपश्चर्या से आकर्षित हो आने जाने लगे, कौडिन्य, वप्र, भद्रिय, महानाम और अश्वजित ये पाच विद्वान् सिद्धार्थ की सेवा मे रहने लगे। उग्र तपस्या करने पर भी सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ, शरीर दुबला पड गया, चलने फिरने की शक्ति भी खतम हो गई चलते हुए शाक्यमुनि (सिद्धार्थ) अचानक गिर पड़ा, एक रेबारी के लडके ने उसे दूध पिलाया, कुछ स्वस्थ हुआ, धीरे धीरे आगे बढता हुआ सिद्धार्थ सोचने लगा, तपस्या की हद ऊपर नहीं करनी चाहिये, शरीर के द्वारा ही सब साध्य है तो इसको टिकाने के लिये थोडा बहुत भाडा देना ही चाहिये इसी विचार से थोडा थोडा आहार पानी प्रारम्भ किया यह देख पांचों विद्वान् चम्पत हो गये क्योंकि अब यह अपना क्या भला करेगा? खाने में पड गया है।

ज्ञान का प्रकाश—सिद्धार्थ रात दिन ध्यान में रहता था, कपिलवस्तु से निकले हुए छ वर्ष व्यतीत हो गये, जब मानव सत्य की खोज में गहरा उतरता है तब अनेक कष्टों का सामना करना ही पडता है सिद्धार्थ को भी अनेक उपसर्ग सहन करने पड़े।

एक बार रात की पहली पहर के शुभ समय और शुभ घड़ी में सिद्धार्थ को सत्य ज्ञान का प्रकाश मालुम हुआ, ज्ञान की पूर्वावस्था की स्मृति हुई, पूर्व भव के संस्कारों का ज्ञान प्राप्त हो गया, और "संबुद्ध" सिद्धार्थ बन गया, "बुद्ध" का प्राप्ति पर्यन्त के पर्याये एक दूसरे से कैसे जकडे हुए हैं, उसका सिद्धार्थ को ज्ञान हो गया।

दूसरी पहर के समय यह मार्ग मिल गया कि जगत के प्राणी दु खी क्यों बनते हैं? और दु ख मिटाने का उपाय क्या?

बुद्ध ने कहा है–तपस्वियों ! मुझे पहले के नाम से सम्बोधन मत करो, मुझे अर्हन्त, तथागत तथा बुद्ध के नाम से पुकारो, मुझे मान अपमान की लालसा नहीं है किन्तु समदृष्टि जीव को प्राचीन नाम से सम्बोधन करना उचित नहा है, खैर। अब तुम्हारे सामने चार आर्य सत्य की व्याख्या करता हूँ शांति से सुनो।

हे ब्राह्मण ! जन्म, जरा, व्याधि और मरण, अनिष्ट सयोग और प्रिय का वियोग इन छ कारणों से ससारी जीव सब दु खी रहते हैं, राजा और रक, सेठ और नौकर, पति और पत्नि, माता और पुत्री, बाप और बेटा सब इस दु'ख मे पडे हुए हैं, इन की शोध को मैं 'आर्य सत्य' कहता हूँ।

यह दु ख तृष्णा से पैदा होता है। ऐहिक सुख की तृष्णा, पर लोक की तृष्णा, और इच्छित भोग सुख की तृष्णा, इन तीन प्रकार की तृष्णा से ही मानव छल प्रपंच कर जगत को ठगने की चेष्टा करता है यह तृष्णा ही दु ख का मूल कारण है इनको मैं 'दु ख समुदाय' नाम का दूसरा सत्य कहता हूँ।

तृष्णा का निरोध करने पर ही मानव को मोक्ष मिलेगा देहदमन अथवा कामभोग से मोक्ष प्राप्ति कदापि न होगी, यह तीसरा "दु खनिरोध" नाम का आर्य सत्य कहता हूँ।

सम्यक्‌दृष्टि, सम्यक् सकल्प, सम्यक् वाचा, सम्यक् कर्म, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम सम्यक् स्मृति, और सम्यक् समाधि यह मैंने नवीन शोध पूर्वक मध्यम मार्ग निकाल जगत के सामने रखा है, और इसी से दु ख का निरोध हो सकेगा, यह मेरा चौथा सिद्धान्त है।

इन चार प्रकार के आर्य सत्य का ज्ञान होने से मैंने 'सबुद्ध' पद को प्राप्त किया है, इन चार सत्यों को मैंने किसी गुरु के पास से

न तो सुना है और न किसी ग्रन्थ में पढ़ा है, लेकिन मैंने जो अनुभव किया वही मैं बताता हूं।

बुद्ध के इस उपदेश से पांचों पण्डित जाग गये और बुद्ध के शिष्य बन गये आगे जाकर पांचों महा प्रतापी हुए थे।

बुद्ध के प्रवचन से "धर्मचक्र प्रवर्तन" नाम का शास्त्र प्रसिद्ध हुआ, ऊपर बताये गये आर्य सत्य के ऊपर सर्व श्रेष्ठ यह ग्रन्थ माना जाता है इशु के गिरिप्रवचन, हिन्दु में भागवत अथवा महाभारत, मुसलमानों में कुरान, और जैनों में कल्पसूत्र और भगवती अद्वितीय माना गया है, ठीक वैसे ही बौद्ध ग्रन्थ में दुःख निवारण का अमोघ उपाय बताने वाला यह "धर्मचक्रप्रवर्तन" माना गया है।

बुद्ध के पांच विद्वान शिष्य एक साथ बनने से लोगों पर गहरा प्रभाव पड़ा, राजा महाराजा आपके पास आने लगे। आप का उपदेश सुन बहुत लोग भक्त बनने लगे। सर्व प्रथम गृहस्थ शिष्या किशा गौतमी बुद्ध की बनी था, वाणारसी नगरी के सेठ के पुत्र यश ने भी बुद्ध की दीक्षा स्वीकार की और भी कितने ही शिष्य तथा भक्त बन गये, आपका परिवार उत्तरोत्तर बढ़ने लगा।

उरूवेला के अरण्य में काश्यप नाम का ऋषि पांच सौ परिवार से रहता था। बुद्ध ने उसे भी ज्ञान दिया और वह फिर रहा हुआ उपद्रव कारी सर्प को भी शान्त कर दिया था, इस चमत्कार से सब आश्चर्य में पड़ गये।

सिद्धार्थ ने बुद्ध होने के बाद भिक्षु संघ के लिये ठीक नियम बांध दिये। एक बार भगवान बुद्ध वेणुवन की तरफ विहार कर रहे

एक प्रसिद्ध मिगार सेठ रहता था यह जैन धर्मी था उनकी पुत्र वधु विशाखा बौद्धधर्मीनी थो, बुद्ध को अपने घर भोजन का आमन्त्रण दिया। विशाखा ने बडी भक्ति की बुद्ध के उपदेश से मिगार शेठ भा बौद्ध बन गया, विशाखा का दूसरा नाम मिगार माता पड गया था।

एक दिन अनुपम प्रिय मल्लों के गाव में बुध्द घूम रहे थे। तब शाक्यकुल का भद्दियकुमार अपनी सेना के साथ उधर से निकला। आनन्द, भृगु० किबिल, उपाली अनुरुद्ध और देवदत्त ये सब बुद्ध के उपदेश से दीक्षित हो गये, उपाली सब से ज्यादा प्रसिद्ध हुआ, अनुरुद्ध को दिव्यदृष्टि प्राप्त हुई, आनन्द जीवन पर्यन्त बुध्द की सेवा में रहता था और देवदत्त पीछे से बुध्द का प्रतिपक्षी बन गया। देवदत्त ने राजगृह का राजकुमार अजात शत्रु के साथ मिल करके बुद्ध के साथ बहुत विरोध किया था मगर सब निष्फल गये क्योंकि बुद्ध एक महान प्रतापी पुरुष था।

धीरे धीरे शिष्यों की सख्या मे बहुत वृध्दि हो गई बड़े बड़े विद्वानो को अलग २ देश मे प्रचारार्थ भेजन लगे किन्तु बुध्द का नियम था कि परीक्षा करके भेजना।

एक वार का प्रसग है कि पूर्ण नाम का शिष्य दूर देश में जाने के लिये सन्नध्द हुआ, तब बुध्द ने कहा-पूर्ण। तू सुनापरत प्रान्त मे जाता है यदि वहां के लोग अतिशय कठोर हुए और तुम्हारा स्वागत न कर गाली देंगे तो तू क्या करेगा ? पूर्ण ने कहा-भगवान्। मैं उनका उपकार मानू गा। बुध्द न पुन कहा, यदि वे पत्थर अथवा शस्त्र से मारपीट करेंगे तो क्या करेगा ? पूर्ण ने कहा, भगवान! फिर भी उनका उपकार मानू गा, क्योंकि धर्म के लिये शरीर का त्याग करने का उन्होंने मुझे मौका दिया, इससे मेरा कल्याण होगा।

बुध्द ने कहा, पूर्ण । धन्य है तुम को । तुम्हारी धर्म श्रध्दा से मैं बडा प्रसन्न हू , अच्छा जाओ तुम्हारा कल्याण हो ।

एक दिन बुध्द कौशाम्बी नगरी में गया वहां के लोगों ने बुध्द को गाली देना प्रारम्भ किया तब आनन्द नामक भिक्षुक ने बुध्द को कहा भगवन् ! यहा के लोग बडे मूर्ख हैं, जो तथागत को भी गाली देते हैं अतः आपन यहां से दूसरी जगह चले जाय। बुध्द ने कहा-यदि जहां भी अपने जायेंगे और वहां के लोग ऐसे ऐसे ही गाली देते रहे तो फिर कहा जायेंगे ? इसलिये गाली को सहन करने की शक्ति पैदा करो, इसी में साधु धर्म की शोभा है और अपना कल्याण है, इस पर आनन्द बुध्द के चरणों में ढल पडा ।

एक बार बुद्ध वेणुवन से बैठे थे, तब भारद्वाज नाम के ब्राह्मण ने खूब गालिया दी, बुध्द सुनते ही रहे, आखिर ब्राह्मण रुक गया । बुध्द ने कहा, भाई ! यदि तुम्हारे घर कोई महेमान आये हों, और उनके लिये रसवती का थाल सामने रखे, यदि वह न खाय तो वह माल पाणी किसका । भारद्वाज ने कहा, इसमें पूछना ही क्या ? वह तो मेरा ही है । बुध्द ने कहा-भाई ! तुमने मुझे गालिया दी, मैंने एक भी न ली तो वह किसके पास रही ? इस पर ब्राह्मण लज्जा से भर गया, बुध्द के चरणो में क्षमा माग चला गया, बुध्द की समझाने की छटा अपूर्व थी ।

अंगुलीमाल लुटारे को भी प्रतिबोध देकर भिक्षु सघ में जोड़ दिया था लोगो को मार मार कर उनकी अगुलियों की माला बना कर अपने गले में पहनता था, जिससे अगुलीमाल नाम पड गया था । अगुलीमाल के रास्ते कोई भी मानव भय से जाता नहीं जाता था, मगर बुद्ध गया और उसे ज्ञान दिया ।

(३) तथागत के उपदेश के स्थान पर तीसरा बनाया (यह स्थान काशी के पास सारनाथ के नाम से प्रसिद्ध है बुद्ध के समय में इसे ऋषिपतन मृगदाव, भी कहते थे) (४) चौथा बुद्ध के निर्वाण के स्थान पर बनाया (यह स्थान गोरखपुर जिलान्तर्गत कसवा नाम के तालुका का यह गाव है, वहा से एक माईल दूर स्थित है इस स्थान को वहा के खेडूत लोग 'माया कु वर का कोट' कहते हैं।

आनन्द ने बुद्ध को पूछा आपके निर्वाण होने के बाद शरीर की क्या व्यवस्था करें ! बुद्ध ने कहा शरीर की पूजा भक्ति की व्यर्थ धांधल में मत पडना, गृहस्थ लोग शरीर की व्यवस्था कर देंगे, तुम तो ज्ञान ध्यान में मस्त रहना शोक न कर साधुओ को सभालना।

इतना कहते कहते तो बहुत थक गये श्वासो श्वास मंद गया, थोड़ी देर ध्यान मुद्रा में स्थित हो गये और शनै शनै आंखें बन्द हो गई, आप का प्राण पखेरू सदा के लिये उड गया। बुद्ध ने निर्वाण पद को प्राप्त कर लिया।

आप के शरीर की अतिम विधि मल्ल राजाओ ने बड़ी शानदार की। महाकाश्यप वगेरे भिक्षु समुदाय शोकातुर बनगया मगर आनन्द ने सान्त्वना दी। तथागत का देह पाच भूतों में मिल गया, बुद्ध की हड्डियां और भस्म मल्लों ने वहा पर ही रखी, और नगी तलवारों का पहरा लगा दिया।

पवन

लेन के लिये अपने अपने दूतों का कुशिनारा भेजा। सब ने अस्थि और भस्म की पूजा की, और थोड़ा हिस्सा लेने के लिये याचना की। लेकिन कुशिनारा लोगों ने सब को इन्कार कर दिया इसपर तकरार पैदा हो गई आखिर द्रोण नामक एक विद्वान ने कहा भाईयों ! क्षमा की मूर्त्ति रूप बुद्ध अपने गुरु थे और उन के नाम पर लड़ना कथमपि उचित नहीं, मेरी इच्छा तो यह है कि आठों दिशा में स्तूप बनाये जाय तो भक्त लोग दर्शन कर आत्म साधन करेंगे और बुद्ध की यादि रहेगी।

सबने यह स्वीकार किया, आठ सोने के कलशों में अस्थि भस्म भर आठों दिशा में भेजे गये। एक मट्टी के घड़े में भर द्रोण गुरु को दिया,दूतों द्वारा कलश अपने २ राज्य में सामैया पूर्वक ले गये उन पर स्तूप बांधे गये। राजगृह में अजातशत्रु ने, वैशाली में लीछवी ने कपिलवस्तु में शाक्य ने, अलकापुरा में बुलियाने, रामग्राम में कोलिन्योंने, पावा में मल्लों ने, वेगुद्वीप में ब्राह्मणों ने, कुशिनारा में मल्लों ने और माटी के घड़े पर द्रोण ने बढ़िया स्तूप बन्धाये, जो आज भी बताते हैं। जो कि आज लुम्बिनीवन, बुद्ध गया, सारनाथ और कुशिनारा तीर्थधाम माने जाते हैं।

बौद्ध धर्म का विशेष प्रचार सिलोन, बर्मा, तिबेट, चीन, जावा, जापान, सुमात्रा, मलाया, इत्यादि देशों में था और है, और वहां अभी भी साधु घूम घूम कर प्रचार कर रहे हैं।

बुद्ध का उपदेश मानव के लिये कल्याणी बनों !!!

तान्त्रिक साधना के रहस्य में प्रवेश प्राप्त किये हुए साधकों के संक्षेप में यही भेद हैं परन्तु ये सब बातें ग्रंथों के आधार पर नहीं सीखी जा सकतीं, अतः यह आवश्यक है कि इनका उपदेश गुरुमुख से प्राप्त किया जाय, केवल पुस्तकों से ही सीखना खतरनाक है।

ऐसी दशा में ऐसे गुरु की परम आवश्यकता रहती है जो कि आध्यात्मिक साधना में प्रवेश शिष्य को करा सके, अतः किसी भी रहस्यमयी साधना में गुरु का स्थान प्रमुख माना है सब सम्प्रदाय में गुरु का बड़ा माहात्म्य बताया गया है।

बिना गुरु के कोई सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती, गुरु के बिना गूढ़ सिद्धान्तों और साधनाओं का मार्ग मिलना असम्भव है। यह गुरु ही बतला सकते हैं कि इस साधक को किस की जरुरत है और क्या दिया जाय? कैसे शिष्य आगे बढ़ सकें? शिष्य की सिद्धि में सहायभूत एक गुरु ही उत्तम माना गया है, इसलिये साधना में गुरु शिष्य दोनों की जरुरत रहती है।

तान्त्रिक साधना के दो रूप हो सकते हैं, मन्त्र, साधन और देवसाधन, अथवा दोनों की साधना एक ही साथ की जाय। इस साधना का योग के साथ विशेष कर हठयोग के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध बताया है।

यहां यह बता देना आवश्यक है कि हठयोग की साधना आध्यात्मिक साधनाओं में सब से नीचे दरजे की साधना है क्योंकि शरीर को शुद्ध करना और ऊंची साधनाओं के लिये तैयार करना ही इसका काम है सभी प्रकार की आध्यात्मिक साधना में ध्यान और चित्त की एकाग्रता परमावश्यक है और शारीरिक मल बहुधा

ध्यान में बाधक होता है। हठयोग के द्वारा शारीरिक मलों का शोधन हो जाने पर साधक मन्त्र तथा चित्त पर अथवा परब्रह्म में चित्त को स्थिर कर सकता है पहली साधना मन्त्र योग की है, दूसरी तन्त्रयोग की, तीसरी राजयोग से सम्बन्ध रखती है, अधिक से अधिक मनोयोग के साथ मन्त्र का अखण्ड जाप करने से महान् शक्ति प्राप्त होती है मन्त्र के अक्षर व्यक्त हो जाते हैं, मानसिक चक्षु के सामने चमकने लगते हैं और फिर अग्नि शिखा की भांति दीप्तिमान हो जाते हैं किसी विशेष उद्देश को लेकर मन्त्र जप करने से मन्त्र का ऊपर बताये हुए ढंग से साक्षात्कार होकर उस उद्देश की प्राप्ति हो जाती है जिस मन्त्र का इस तरह साक्षात्कार हो जाता है उसे सिद्ध मन्त्र कहते हैं, सिद्ध मन्त्र के उच्चारण से आश्चर्य जनक सिद्धि हो सकती है।

इसी प्रकार दीर्घकाल पर्यन्त एक निश्चित विधि के अनुसार श्रद्धा-भक्ति पूर्वक किसी सुयोग्य गुरु के नीचे किसी देवता विशेष का ध्यान करने से उस देवता का साक्षात्कार होता है, देवता साधक के सामने प्रकट होकर उसके मनोरथ को पूर्ण करता है इसके बाद देवता साधक का सर्वदा सहाय करता रहता है। राजयोग की पद्धति से साधक परमात्मा की प्राप्ति के मार्ग में ज्यों ज्यों आगे बढ़ता है, त्यों त्यों उसे अणिमा लघिमा आदि अष्टमहासिद्धियां प्राप्त होती जाती हैं।

साधक को चाहिये कि वह प्रसन्न मन से किसी ऐसे एकांत स्थान में जावे जो शुद्ध और स्वच्छ हो तथा वहां वातावरण बड़ा पवित्र हो, वहां सुख पूर्वक बैठ अपने इष्टदेव का ध्यान प्रारंभ करे, ध्यान में उसे इतना तन्मय हो जाना चाहिये कि उसे बाह्य अनुसन्धान बिल्कुल न रहे, और इस प्रकार उसे व्यापक शक्ति के साथ

जैसे बौद्ध की भाषा में शून्य कहते हैं अभेद का चिंतवन करना चाहिये। उस के चित्त की अवस्था उस समय वैसी ही जानी चाहिये जैसी की सुषुप्ति काल में होती है। चिरकाल तक इस साधना का अभ्यास करने से उसके मानसिक नेत्रों के सामने कुछ खास विलक्षण दिखाई देने लगते हैं जिन से यह प्रमाणित होता है कि साधक देवता के साक्षात्कार की ओर क्रमश बढ़ता जा रहा है

ये चिह्न या लक्षण पांच प्रकार के होते हैं प्रारंभ में मृगतृष्णा का दर्शन होता है, इस के बाद धूम का दर्शन होता है, तीसरी भूमिका में साधक को अन्तरिक्ष में पत गिये की भांति ज्योतिष्ठ कण दिखलाई देते हैं, चौथी भूमिका में एक ज्योति के दर्शन होते हैं, और पांचवीं भूमिका में मेघ रहित आकाश में व्याप्त रहनेवाली सूर्य की ज्योति के समान एक स्थिर प्रकाश का दर्शन होता है, अर्थात् काफी समय ध्यान का अभ्यास करते रहने से साधक को एक ऐसे स्थिर प्रकाश का दर्शन होता है जो कभी कम नहीं होता, साधक इस अवस्था को पहुचने पर कभी च्युत नहीं होता और नीचे की अवस्थाओं का अनुभव नहीं करता।

देवता के साक्षात्कार की भी तीन भूमिका है पहली भूमिका में बीजमंत्र का दर्शन होता है, आगे चल कर यह एक अस्पष्ट मानव आकृति में बदल जाता है ध्यान का क्रम जारी रखने से और आगे चल कर साधक को देवता का स्पष्ट रूप दिखाई देने लगता है। जिस में उस के सारे अंग वर्ण आयुध एवं वाहन अलग अलग दिखलाई देते हैं यह रूप अत्यंत मनोहर होता है, जिसका दर्शन कर साधक आनन्द से भर जाता है,

देवता का निरंतर आंखों के सामने ही उसकी सिद्धी है, में उसकी दिव्यमूर्ति बार बार प्रकट होती है और छिप जाती

है निरन्तर अभ्यास से उसका दर्शन स्थिर हो जाता है, इस अवस्था को पहुँच जाने पर साधक सिद्ध कहलाने लगता है, उसका इष्टदेव उसकी सारी कामनाओं को पूर्ण कर देता है जिससे साधक अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न हो जाता है।

मन्त्र का देवतों के साथ एक प्रकार से अभेद सम्बन्ध होता है, उसका भी इसी प्रकार साक्षात्कार हो सकता है। मन्त्र के अक्षर पहले साधक के सामने प्रकट होते हैं, और धीरे धीरे अधिक दीप्तिमान होकर शक्ति से जाज्वल्यमान हो उठते हैं इनका दर्शन जब स्थायी रूप से होने लगता है तब मन्त्र की सिद्धि हो जाती है, उस मन्त्र से साधक को वह सब कुछ प्राप्त हो सकता है जो कि उसे देवता से प्राप्त हो सकता था।

उपरोक्त साधन की प्रक्रिया बड़ी लम्बी है, उसके लिये बहुत वर्षों तक अभ्यास करने की जरूरत है साधन एक कला है, और मनुष्य जीवन इस कला के अभ्यास के लिये ही मिला है, सिद्धार्थ ने इस साधना के बल पर ही बुद्धपद प्राप्त किया था और संसार के दुःखों का कारण ढूंढ सका था।

महात्मा बुद्ध ने संसार को दुःखमय मानकर "दुःखनिरोध" को सब का अन्तिम ध्येय निर्णय किया था और इसके लिये सभी संस्कारों का शमन चित्तमलों का त्याग और तृष्णा का क्षय परमावश्यक बतलाया था और ये सब बातें साधना के बल पर ही साध्य हैं।

बौद्ध का मूर्त्ति तत्त्व—

मन को स्थिर करने के लिये किसी न किसी आलम्बन की परम जरूरत है, अनेक आलम्बन की अपेक्षा उत्तम आलम्बन

मानी गई है जिससे देखने पर कलुषित परिणाम भी शान्त हो जाते हैं।

हिन्दु धर्म मे विष्णु, शङ्कर और ब्रह्मा की मूर्तियां मानी गई हैं जैना मे तीर्थ करा की प्रतिमा प्रसिद्ध ही हैं, मुसलमान लोग पश्चिम दिशा के आश्रित खुदा का मूर्त्ति रूप मान नमाज पढते हैं, ठीक वैसे ही बौद्ध धर्म भी मूत्तितत्त्व मानता है।

बौद्ध धर्म में मूर्त्तियों का निर्माण वज्रयान मत के प्रादुर्भाव के साथ हुआ है वज्रयान के मुख्य ग्रन्था के अनुसार इन देवी देवताओं का काइ अस्तित्व ही नहीं है, वे मब केवल शून्यता के ही भिन्न भिन्न रूपान्तर हैं इन देवी देवताओ के रूप उपासको की भावना तथा सिद्धि के अनुमार प्रकट हुए मानते हैं अब सक्षेप में बौद्ध धर्म के देवी देवताओं का हाल सुनिये।

सब से पहले बोधिचित्त अर्थात् अव्यक्तपूर्ण ज्ञान सम्पन्न स्थिति की कल्पना की जाती है इस बोधिचित्त की पाच वृत्तियां, अथवा अवस्थाए मानी गई हैं, और इन्हीं को सुप्रसिद्ध पांच ध्यानी बुद्ध कहा गया है इन ध्याना बुद्धों के नाम वैरोचन, रत्नसभव, अमिताभ अमोघसिद्धि तथा अक्षोभ्य है, पांचो ध्यानी बुद्ध पद्मासन में बैठे हुए दिखलाये जाते हैं पद्मासन म इस प्रकार पालकी मार बैठते हैं कि दोनों पैरों क तलिये ऊपर की ओर दिखाई देते हैं, ध्यानी बुद्धों की विभिन्नता सूचक उनकी हस्तमुद्राए होती है।

(१) ध्यानी बुद्ध वैरोचन के दोनों हाथ सुप्रसिद्ध धर्मचक्र अथवा व्याख्यान मुद्रा म होते हैं, इस मुद्रा मे दोनों हाथ वक्ष स्थल क समीप होते है। और दाहिना हाथ बायें हाथ क ऊपर रहता है। दाहिने हाथ की तजनी अगुली उसी हाथ के अगूठे से मिली होती है और

इन दोनों का सम्पर्क बाये हाथ की कनिष्ठिका अर्थात् सब से छोटा अगुली से होता है।

(२) ध्यानी बुद्ध रत्नसम्भव की हस्त मुद्राए वरद होती है इस मुद्रा में बाया हाथ हथेली ऊपर किये हुए गोद में रखा रहता है, और दाहिना हाथ हथेली ऊपर किये हुए इस प्रकार कुछ आगे बढ़ा हुआ होता है जैसे उस हाथ में किसी को कोई चीज दी जा रही हो।

(३) ध्यानी बुद्ध अमिताभ समाधिमुद्रा में दिखलाये जाते है इस मुद्रा में दोनों हाथ हथेली ऊपर किये हुए एक दूसरे के ऊपर गोद में रखे हुए दिखलाये गये हैं।

(४) ध्यानी बुद्ध अमोघ सिद्धि सदा अभयमुद्रा में दिखलाये जाते हैं यह मुद्रा भी प्राय वरद मुद्रासा है, भेद केवल इतना ही है कि दाहिना हाथ वक्ष स्थल के पास उठा हुआ होता है, और उस का हथेली सामने की तरफ होती है यह मुद्रा अभय रक्षा अथवा आश्वासन दिया जाना सूचित करती है।

(५) पाचवा ध्यानी बुद्ध अक्षोभ्य भूस्पर्श मुद्रा मे दिखलाये जाते हैं इस मुद्रा मे बाया हाथ उसी स्थिति में रहता है जैसा कि वरद तथा अभय मुद्रा म दाहिने हाथ की हथेली नीचे की ओर होती है और उसकी अगुलिया दाहिने घुटने से नीचे की ओर झुकी हुई पृथ्वा का स्पर्श करती हुई दिखलाई जाती है गौतम बुद्ध की खड़ी अथवा बैठी जितनी मूर्त्तिया होगी वे सब उपरोक्त पाच मुद्रा में से ही मिलेगी।

सिद्धार्थ ने भूस्पर्श मुद्रा का प्रदर्शन उस समय किया था जिस समय मार यानि कामदेव ने अपनी कन्याओं सहित उनपर आक्रमण किया था कि वे ध्यान यानि अपनी तपस्या से विमुख होजावें। इस पर बुद्ध ने पृथ्वी को साक्षी करने के लिये उसका स्पर्श किया था और अपने ध्येय की दृढ़ता सूचित की थी, इस मुद्रा के प्रदर्शन करते ही मार शीघ्र ही अन्तर्हित हो गया था और फिर उसने गौतम को क्षुब्ध करने का प्रयत्न नहीं किया।

शाक्यसिंह ने धर्मचक्र मुद्रा का अवलम्बन उस समय किया था जब ज्ञान प्राप्ति के अनन्तर सारनाथ नामक स्थान पर सर्व प्रथम बौद्ध धर्म का उपदेश प्रारंभ किया। बौद्धधर्म के प्रचार का सूचक सहि-मारूपी धर्मचक्र है और सारनाथ मूर्त्तियोंमें मृगा द्वारा सूचित किया जाता है अत अधिकतर गौतम की प्रतिमा धर्मचक्र मुद्रा में मिलेगी, और मूर्ति के नीचे अगल बगल दो हिरन और बीच में एक पहिया भी मिलेगा।

ध्यानीबुद्धों के रंग क्रमश सफेद, पीला लाल, हरा और नीला है, परन्तु अधिकतर चित्रों में ही मिलते हैं और इन का गूढ तत्व परम गहन बताया है जैनों के भी पच परमेष्ठी माने हैं और उनका वर्ण भी उपरोक्त की भांति पांच तरह का है, ठीक वैसे ही बुद्धों के ये पच परमेष्ठी हैं और अलग अलग वर्ण बताया है, इन रंगों का सम्बन्ध तांत्रिक षट कर्मों से है।

शान्ति सम्बन्धी काम मे श्वेतरंगवाली मूर्त्ति प्रयुक्त होती है,, रक्षा सम्बन्धी विधि म पीले रग की मूर्त्ति काम में लाजाती है, आकर्षण तथा वशीकरण में हरे और लालरंगों की मूर्त्ति का प्रयोग होता है और उचाटन तथा मारण विधि में नीला रंग काम में लिया जाता

है जिन ध्यानी बुद्धका जो रंग है वही उनसे, समुद्भूत समस्त देवी देवताओं का रंग होगा हां ! कभी कभी एक ही ध्यानी बुद्ध अथवा उन से उत्पन्न कोई देवी देवता भिन्न भिन्न रंगों में मिलेंगे इसका अर्थ एक ही मूर्तिका विभिन्न षट्कर्म विधियों में प्रयोग समझना चाहिये ऐसा विधान बौद्ध ग्रन्थ बताता है।

उपर्युक्त ध्यानी बुद्धों के वाहन क्रमशः दो सर्प, दो सिंह, दो मयूर, दो गरुड़ और दो हस्ती हैं इसके अतिरिक्त ध्यानी बुद्धों के चिह्न क्रमशः चक्र रत्नदृग्ग (मणियों का समूह) कमल, विश्वपञ्च (दोनों ओर तीनफल वाला छोटासा शस्त्र) और वज्र (त्रिशूलसदृश छोटासा शस्त्र) है। भारत वर्ष में ध्यानी बुद्धों की अलग मूर्तियां अथवा चित्र प्राय नहीं मिलते, ऐसे चित्र नैपाल तथा तिब्बत में प्रचुरता से मिलते हैं।

इन पांच ध्यानी बुद्धोंके अतिरिक्त कहींकहीं वज्रसत्व नामक एक छट्टे ध्यानी बुद्ध की कल्पना की जाती है, वज्रसत्व ध्यानी बुद्धों के पुरोहित माने जाते हैं और इस पदके सूचक घंटा तथा वज्र उनके हाथों में दिखलाये जाते हैं, पांचों ध्यानी बुद्ध तापस वेष में ही दिख लाये जाते हैं वे सदैव ध्यानमग्न रहते हैं सृष्टि के कार्य ध्यानी बुद्धों से उत्पन्न दिव्य बोधी सत्वगण करते है पांचों ध्यानी बुद्धों की शक्तियां क्रमशः वज्रधात्वीश्वरी, मामकि, पाडरा आर्यतारा तथा लोचना है और इन से उत्पन्न दिव्य बोधिसत्व क्रमशः समंत भद्र, रत्नपाणि, पद्मपाणी (सुप्रसिद्ध अवलोकितेश्वर,) विश्वपाणी तथा वज्रपाणी है छट्टे ध्यानी बुद्ध वज्रसत्व की शक्ति का नाम वज्रसत्वात्मिका है और इन दोनों से उत्पन्न दिव्य बोधिसत्व का नाम घंटापाणी है।

ध्यानी बुद्धों की शक्तियां अपने पतियों के चिह्न तथा वाहनों से पहिचानी जाती है, इसके अतिरिक्त उनके पति की विशिष्टहस्तमुद्रायुक्त

ध्यानासन मूर्ति उनके मुकुट में सामने बनी रहती है, इसी प्रकार प्रत्येक वंश के देवी तथा देवताओं के मुकुट में उस वंश के जन्मदाता ध्यानी बुद्ध की विशिष्ट हस्तमुद्रा युक्त ध्यानासन मूर्त्ति दिखलाई जाती है और यही उनका मुख्य लक्षण माना जाता है।

महायानीय मत के अनुसार धर्म अमर अथवा सनातन माना जाता है और बुद्ध का व्यक्तित्व इस धर्म के पूर्ण ज्ञान का साधनमात्र माना जाता है,प्रत्येक युग में एक न एक मनुष्यशरीर धारी बुद्ध (अथवा ज्ञानी) धर्म का प्रचार करते रहते हैं।

एक बुद्ध के निर्वाण प्राप्त होने पर दूसरे बुद्ध के जन्म तक कल्प के अधिष्ठाता ध्यानी बुद्ध से उत्पन्न दिव्य बोधिसत्व बौद्ध धर्म की देख रेख करते हैं, गौतम बुद्ध के प्राय २५०० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, अब से लग भग २५०० वर्ष व्यतीत होने पर अर्थात् गौतम बुद्ध के निर्वाण के बाद ५००० वर्ष पर बुद्ध मैत्रेय का जन्म होगा इस समय बौद्ध मत का भद्रकल्प चल रहा है; और इसके अधिष्ठाता ध्यानी बुद्ध अमिताभ है अत इन ५००० वर्ष में ध्यानी बुद्ध अमिताभ से उत्पन्न बोधिसत्व पद्मपाणी (जिनका दूसरा नाम अवलोकितेश्वर है) का प्रबन्ध चलता रहेगा। यही इस युग के प्रधान बोधिसत्व माने जाते हैं।

बोधिसत्व अवस्था बुद्ध की अवस्था के पूर्व की स्थिति मानी गई है, अत बोधिसत्व प्राय राजसी वेष में मुकुट आभूषणादि युक्त दिखलाये जाते हैं और बुद्ध तापस वेष में है।

जिस प्रकार भागवत अर्थात् वैष्णव धर्म म वैष्णत्व क २४ अवतार माने गये हैं और जिस सिद्धान्त पर जैन धर्म में २४ तीर्थ-करों की भावना की जाती है ठीक उसी तरह प्राचीन (अर्थात

हीनयान) बौद्ध धर्म में २४ अतीत मानुषी बुद्धों की बात मिलती है महायान मत में भी २४ से ३२ तक अतीत मानुषी बुद्धों की बात दी है इन मानुषी बुद्धों में आखिरी सात (जिन में सब से अन्त में गौतम बुद्ध का नाम आता है) विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं इन के नाम विपश्यी शिखी, विश्वभू, क्रकुछन्द, कनकमुनि, काश्यप, तथा शाक्यसिंह है। ये सातों मानुषी बुद्ध एक साथ पद्मासन में भूस्पर्श मुद्रा युक्त मिलते हैं, और यही सात की गणना इनकी पहचान है कभी कभी इन की संख्या भावी बुद्ध मैत्रेय को मिला लेने से आठ मिलती है, इनमें से प्रत्येक का एक विशिष्ट वृक्ष माना गया है। गौतम बुद्ध की मूर्तियां के साथ बोधिसत्व अवलोकितेश्वर तथा बुद्ध मैत्रेय पार्षदों के रूप में चंवर लिये हुए दिखलाये जाते हैं।

वज्रयानीय बौद्ध धर्म का मुख्य गढ़ इस समय महाचीन (तिब्बत) है, वहां के प्रधान शासक दलाईलामा महात्मा गौतम बुद्ध के अवतार माने जाते हैं, और उनके बाद पद में श्रेष्ठ शीगर्ची के ताशीलामा बोधिसत्व अवलोकितेश्वर के अवतार माने जाते हैं, वर्जयान का गायत्री तुल्य मुख्य मन्त्र ॐ मणिपद्मे हुम्,, यह बोधिसत्व अवलोकितेश्वर का षड् अक्षरी मन्त्र है, इनके मुख्य चिह्न कमल तथा सुमिरनी हैं।

इनके अतिरिक्त वर्तमान बौद्ध धर्म में बोधिसत्व मंजु श्री का भी पद बहुत उंचा माना जाता है, इस स्थान पर बोधिसत्व मैत्रेय (भावी बुद्ध) तथा मंजु श्री के विषय में कुछ चर्चा करते हैं।

कहा जाता है कि बौद्ध तन्त्रों के प्रधान आचार्य मैत्रेय है और वे इस समय तुषितनामक स्वर्ग में विराजमान हे, असंग नामक किसी व्यक्ति ने इसी तुषित स्वर्ग में ध्यान द्वारा गमन करके आचार्य मैत्रेय से तन्त्रों के रहस्य को जाना था, मैत्रेय एक ऐसे देवता

हैं जिन्हें हीनयानीय तथा महायानीय दोनों सम्प्रदाय वाले मानते हैं मैत्रेय का चिह्न उनके मुकुट म आगे की ओर बना हुआ एक छोटामा चैत्य या स्तूप है इस स्तूप की कथा इस तरह है। गौतम बुद्ध के पूर्व वाले मानुषी बुद्ध काश्यप गया के समीप कुक्कुटपादगिरि के शिखर पर गड़े हुए हैं और उनके भौतिक अवशेष के ऊपर एक स्तूप विद्यमान हैं जिस समय गौतम बुद्ध के निर्वाण से ५००० वर्ष के बाद मैत्रेय बुद्ध रूप से इस भूमडल पर अवतार्ण होंगे उस समय वे काश्यप के स्तूप पर जायेंगे और काश्यप बुद्ध मैत्रेय बुद्ध को उनके वस्त्र त्रिचीवर (लंगोट धोती और दुपट्टा) देंगे उपर्युक्त मुकुट स्थित चैत्य के अतिरिक्त मैत्रेय के चिह्न धर्मचक्र तथा अमृत कुम्भ भी माना जाता है।

बोधिसत्व मजु श्री स्मृति मेधा बुद्धि, तथा वाकपटुता के स्वामी माने जाते हैं अर्थात् इन की उपासना से ये शक्तियां मानव को मिलती हैं साधारणतया इनके बायें हाथ में बौद्ध धर्म की सुप्रसिद्ध पुस्तक प्रज्ञापारमिता दिखलाई जाती है और दाहिने हाथ में अज्ञानान्धकार को काटने वाला खड्ग दिखलाया जाता है, कहा जाता है कि महात्मा मजु श्री ने नैपाल देश में सभ्यता तथा बौद्ध धर्म का प्रचार चीन से आकर किया था। कहते हैं कि नैपाल देश पहले भील रूप मे जलमग्न था, और इस विशाल जलराशि के मध्य भगवान आदि बुद्ध का स्थान था जहां पृथ्वी के गर्भ से निरंतर ज्वाला निकलती थी जल के कारण यह स्थान अगम्य था अतः मजुश्री ने एक ओर से इस विशाल जल राशि में नहरसी निकाल दी यही नहर आजकल वागमती नदी के रूप मे बहती है, इस नहर द्वारा सब जल बह गया, और सूखी भूमि निकल आई। यहीं पर बस्ती बस गई और अब सरलता पूर्वक आदि बुद्ध की ज्वाला के ऊपर मन्दिर बन गया। इस समय यह मन्दिर स्वयम्भूनाथ के नाम से विख्यात है।

ध्यानी बुद्धों के देवी देवता रंग बेरंगे भी माने गये हैं इस के बारे में विशेष जानकारी प्राप्त करने की इच्छावाले को श्री विनय तोष भट्टाचार्य द्वारा सम्पादित "साधनमाला" नामक ग्रंथ को देख लेना चाहिये।

ईश्वर कर्त्ता नहीं, दृष्टा है।

विज्ञानवाद के जरिये गाड़ियां प्रादुर्भाव हुई मोटर और रिक्शा प्रारंभ हुई माईक्ल और घड़ायाल की उत्पत्ति हुई, इसी विज्ञानवाद के बल पर ही यन्त्रों का उद्गम हुआ, इन सब में कारण मानव है क्योंकि मानव के द्वारा ही यह सब बन गये हैं इसी प्रकार ईश्वर की इच्छा से ही सृष्टि की रचना हुई है ईश्वर की प्रेरणा से ही वर्षा पड़ता है पवन चलता है धान्य की उत्पत्ति हुआ करती है, ईश्वर की इच्छा के बिना वृक्ष का पत्ता भी नहीं हिलता है, प्राणी मात्र को उत्पन्न करने वाला ईश्वर ही है सुख दुःख का निर्माता ईश्वर ही है इस प्रकार भारतीय लोगों की मान्यता के विरुद्ध जैन और बौद्ध की मान्यता है। जैन और बौद्ध कहता है ईश्वर जरूर है इसको मानना भी चाहिये मगर ईश्वर कर्त्ता नहीं बल्कि दृष्टा है।

ईश्वर को कर्त्ता मानने में बड़ा दोष आ जायगा, क्योंकि यह बात सामान्य मानव भी समझ सकता है कि बिना बाप के बेटा हो नहीं सकता, तो ईश्वर को सृष्टि का कर्त्ता मानेंगे तो ईश्वर को किसने बनाया, ईश्वर के बाप का नाम क्या ? यह प्रश्न उठेगा। यदि कहोगे कि वह स्वयं सिद्ध है, और सृष्टि की रचना की है, तो यह बताओ कि वह ईश्वर सृष्टि की रचना के पूर्व कहां रहता था, और रचना के बाद कहां रहता है ? क्या खाता है ? क्या पीता है ? इत्यादि प्रश्न उठते ही रहेंगे, आखिर हताश होकर के कहना ही पड़ेगा

कि अनादिकाल का है, तो जैन और बौद्ध पहले ही डके की चोट पुकारते हैं कि सृष्टि अनादि काल की है और इसको कोई बनाने वाला नहा है।

यदि हठाग्रह करके कहोगे कि नि संदेह सृष्टि की रचना ईश्वर ने की है तो हम पूछते हैं कि ईश्वर ने जगत का बनाने के समय पहले पुरुष का निर्माण किया या स्त्री का ? अर्थात् कुकडी पहले हुई या इन्डा ? अगर कहोगे कि कुकडी को पहले बनाई तो कहो कि इन्डे के बिना कुकुडी कैसे हुई ? यदि कहोगे कि इन्डे को पहले बनाया तो कुकडी के बिना इन्डा कहां रहा ? इस का अन्त न तो किसी ने पाया, और न कोई पा सकगा, आखिर निरुत्तर होने पर तो कहना ही पड़ेगा कि अनादिकाल से चला आया यह ससार है। जैन पहले ही कह देता है।

जैन कहता है अनादिकाल के कर्म के बन्धन से जीव अल्पज्ञ होता है और आवरण रूप कर्म का क्षय होने पर यह जीव सर्वज्ञ बनता है और आठों कर्म से रहित होने पर जीव सिद्ध कहलाता है, वही ईश्वर माना जाता है, यानि कर्म से मुक्त जीव ही ईश्वर बनता है, जैन दर्शन में ईश्वर एक नहीं, बल्कि अनादिकाल से लेकर आज दिन पर्यन्त अनेक जीव मुक्ति में गये हैं और जैन दर्शन की मान्यता के अनुसार ये सब सर्वज्ञ और ईश्वर कहलाते हैं, इसलिये व्यक्ति गत अपेक्षा से ईश्वर अनेक भी माने हैं और सिद्ध की अपेक्षा से ईश्वर एक भी माना है।

ईश्वर पुन ससार में अवतार को धारण नहीं करते, चू कि जन्म मरण ग्रहण करने का कारण भूत कर्म का निकन्दन कर दिया है जब कर्म ही सर्वथा छुट जाता है तब यही आत्मा परमात्मा (ईश्वर) बन जाता है।

ईश्वर—अविरति, निद्रा, राग, द्वेष, मिथ्यात्व, अज्ञान, खेद, अरति, रति, भय, शोक, दुगन्छा, हास्य, दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय इन अठारह दूषणों से सर्वथा रहित है, वही ईश्वर है। देवाधिदेव है और वही तीर्थंकर है, उपरोक्त दूषणों में म एक भी दूषण देखा जायगा तब तक वह ईश्वर नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ईश्वर राग द्वेष शरीर क्रिया आदि से रहित है और उनको इच्छा भी नहीं होती, जब इच्छा का निरोध हो जाता है, तब किसी भी कार्य में उनकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती, इसलिये जैन तथा बौद्ध कहता है कि ईश्वर किसी चीज को बनाते नहीं, नाश करते नहीं, और किसी को सुख या दुःख देते नहीं। अब जो ममार में घटमाल चालु है वह स्वाभाविक ही है अथवा संसार के जीव सुख और दुःख भोग रहे हैं यह सब अपने अपने किये गये कर्म के अनुसार भोगते हैं।

यद्यपि ईश्वर निरंजन और निराकार है, एवं कुछ लेते या देते भी नहीं, फिर भी ईश्वर की उपासना करना परमावश्यक है, इसलिये कि हमें भी ईश्वर बनना है हम को भी संसार से मुक्त होना है, उपासना उसीकी करनी चाहिये जो कि संसार से सदा मुक्त हो गया हो, फल प्राप्ति का आधार लेना या देना नहीं है, किन्तु भावना पर आधार है, दान देने वाला जिसको दान करता है उससे फल नहीं पाता है, परन्तु दान देने के समय उसकी सद्भावना ही फल देती है, अर्थात् वही पुण्य होता है इसी प्रकार ईश्वर की उपासना करते समय जो हमारा अन्तःकरण शुद्ध होता है वही उत्तम फल है।

साधु सन्तों के पास जाते हैं तो क्या कुछ देते हैं ? लेकिन सन्त पुरुषों के निकट जाने से हृदय शुद्ध होना ही फल है। वेश्या के

पास जाने से क्या वेश्या नरक में डाल देती है? नहीं, किन्तु वेश्या के पास बुरे विचार पैदा होना ही नरक का कारण है। इसी प्रकार ईश्वर का ध्यान, भक्ति उपासना और प्रार्थना करने से हमारा अन्तःकरण पवित्र होता है और यह पवित्र होना ही मुख्य धर्म है और इसी से मानव का एक दिन अवश्य कल्याण अवश्यमेव होगा।

इसलिये ईश्वर को कर्त्ता के रूप में नहीं बल्कि दृष्टा के रूप में अवश्यमेव मानना चाहिये और उसका स्मरण प्रातःकाल करना चाहिये।

जैन और बौद्ध की मान्यता—

जैन और बौद्ध की मान्यता के बारे में यहां संक्षेप में विचार किया जाता है। यद्यपि पृष्ठ एक सौ लिखना था, फिर भी कुछ ज्यादा हो गये हैं किन्तु आवश्यक बातें रह जाने के कारण यहां लिखना उपयुक्त समझ लिख रहा हूं।

युरोप में जब जैन धर्म का नाम पहुंचा, तब से जैन और बौद्ध के विषय में ऐतिहासिक सम्बन्ध है या नहीं? इसके लिये बड़े बड़े संशोधक भी विचार में पड़ गये थे।

जैनों की यह मान्यता थी कि भगवान पार्श्वनाथ के शुभदत्त नाम का एक गणधर था, उसका शिष्य हरिदत्त था, तत् शिष्य आर्य सुभद्र और इसका शिष्य स्वयप्रभसूरि था, उसके बहुत शिष्यों में एक पिहिताश्रव नाम का शिष्य था, उसका शिष्य बुद्धकीर्ति था और दूसरा नाम गौतम बुद्ध था, इसके लिये दर्शनसार ग्रंथ में लिखा है कि पार्श्वनाथ के तीर्थ में बुद्ध कीर्ति सरयूनदी के काठे पर पलास नाम के नगर में रहता था। एक बार नदी की बाढ़ आई उस में सैंकड़ों मरी

हुई मच्छलियें आई मरी हुई मच्छियों को देख बुद्धकीर्त्ति ने निश्चय किया कि अपने आप मरे हुए जीव को खाने में कोई दोष नहीं है, ऐसा निर्णय कर मत्स्य को खा गया और लोगों को कहने लगा मांस में कोई जीव नहीं है अतः खाने में कोई दोष नहीं है जैसे कि दूध दही फल फूल खाया जाता है वैसे ही मांस भक्षण करो और जलपान की भांति दारु पीने में भी कोई दोष नहीं है, ऐसी प्ररूपणा करके बौद्ध धर्म की स्थापना की।

दूसरी कथा के अनुसार तो ऐसा लिखा है कि पार्श्वनाथ भगवान के एक मौद्गलायन नामक शिष्य ने महावीर के ऊपर द्वेष भाव को लेकर के बौद्ध धर्म की स्थापना की, और शुद्धोदन के पुत्र सिद्धार्थ को बौद्ध का ईश्वर बनाया। बौद्ध धर्म जैन धर्म में से निकला इस प्रकार पहले युरोपियन पण्डित लोग (कोलब्रुक प्रिन्सेप, स्टीवन्सन, ओ टामस) भी मानते थे और महावीर का शिष्य भी गौतम था जिस से सम्भव है कि पण्डितों ने अनुमान लगाया होगा।

दूसरी तरफ बौद्ध लोग जैनों को पाखंडी कहते हैं और बौद्ध ग्रंथ से चोरी करके जैनों ने जैन धर्म की स्थापना की है, इस प्रकार का जैनों पर आरोप लगाते हैं, पहले के युरोपियन विद्वानों का यही मत था कि जैन धर्म बौद्ध धर्म की एक शाखा है बौद्ध धर्म अवनति की ओर झुका तब जैन धर्म की उत्पत्ति होगई, ऐसा विल्सन और वेन्फी जैसे भारत के संशोधक भी मानते थे, और ब्रि लासन जैसे विद्वान् ने भी इस बात का समर्थन किया था।

इस प्रकार उपरोक्त विद्वानों की मान्यता को अथवा प्रचलित लोकोक्ति को अचयाकोवी ने सर्वथा मिथ्या कर दी, उन्होंने कहा- जैन और बौद्ध धर्म में कितनी ही बातों का साम्यपना है मगर दोनों धर्म बिलकुल अलग अलग और स्वतंत्र धर्म हैं, एक दूसरे की शाखा मानना मिथ्या और सर्वथा असंगत है।

जैन और बौद्ध धर्म घन सत्ता का अनान्तर करते हैं, ब्राह्मण गुरु और यज्ञ के मामने दोनों का मदत विरोध है, मबसे श्रेष्ठ सगुण ईश्वर को कर्ता दोनों नहीं मानते हैं और बाह्य स्वरूप में भी दोनो एक ही मान्यता वाला है। जैसे मन्दिर स्तूप अथवा चैत्य में पूजा विधि भी समान है, और धर्म के सस्थापकों के अर्हत बुद्ध और जिन नाम दोनों में समान हो है, मूर्त्ति का आकृति तथा स्थापना एव पद्मासन मुद्रा वगेरे में साम्यपना है, इस स्थिति को देख ह्युअेनत्स्याग भी आश्चर्य में पड गया था दोनों अमुक चक्रवर्ती का भी स्वीकार करते हैं, और गुणों का आरोहण भी ममान किया जाता है, अहिंसा के सिद्धान्त पर दोनो ने खूब जोर दिया है, नैतिक और धार्मिक आज्ञा मे भी समानता है, और इस से ज्यादा समानता तो यह है कि दोनों धर्म के प्रचारक भगवान महावीर और गौतम बुद्ध समकालीन ही हुए और दोनो का जन्म भी बिहार प्रान्त में ही हुआ था और उन के कुटुम्बी जना का नाम भी कुछ मिलता जुलता है, फिर भी दोनों में बहुत कुछ अंतर है, यहां जरा महावीर और गौतम बुद्ध के परिवार सम्बन्धी वर्णन कर लेते हैं।

भगवान महावीर का जन्म क्षत्रियकुड मे हुआ था, और गौतम बुद्ध का कपिल वस्तु नगर म हुआ था। महावीर क पिता का नाम राजा सिद्धार्थ था, बुद्ध के पिता का नाम शुद्धोदन था। महावीर की माता त्रिशला थी और बुद्ध की माता मायादेवी थी महावीर का पहले वर्धमान नाम था बुध्द का पहले सिध्दार्थ था। महावीर की पत्नी का नाम यशोदा था और बुध्द की पत्नी का यशोधरा था, महावीर का भाई नदीवर्धन था, और बुध्द के भाई का नाम नद था, महावीर के प्रियदर्शन नाम की एक पुत्री थी और बुध्द के राहुल नाम का एक पुत्र था जो कि बुध्द ने इसे भी दीक्षा दे दी थी। महावीर की माता २८ वर्ष के बाद स्वर्ग गई और बुध्द की माता का ७ दिन के बाद ही

देहावसान हो गया था इसलिये दोनों व्यक्ति भिन्न भिन्न हैं और उन दोनों की मान्यता भी पृथक पृथक है।

बौद्धों के महाविनय और समानफला, नाम के ग्रंथ में भी लिखा है कि महावीर बुद्ध का प्रतिस्पर्द्धि था, इससे भी अनुमान किया जा सकता है कि दोनो अलग २ धर्माचार्य थे और जैन तथा बुद्ध धर्म एक दूसरे की शाखा प्रशाखा नहीं है, किन्तु स्वतंत्र धर्म हैं।

कोई तो फिर यहां तक कह डालता है जैन और बौद्ध दोनों वेद में से निकले हुए धर्म हैं, बौधायन नामक वैदिक पुस्तक की नकल करके अपने अपने धर्म की स्थापना की है लेकिन यह बात आकाश कुसुम की भांति सर्वथा असंगत है, क्योंकि जो विषय जैन ग्रंथों में प्रतिपादित हैं, वह बौधायन में हैं भी नहीं और जो बौधायन में हैं वह जैन में बिलकुल नहीं हैं, इसलिये जैन और बौद्ध को वैदिक की शाखा मानना सर्वथा अनुचित है।

जैन और बौद्ध में ऊपर ऊपर से तो बहुत बातों का साम्य है जैसा कि माला के १०८ मणके दोनों में मान्य हैं, पाली और प्राकृत लिपि भी मिलती आती है। अमुक बौद्ध भी मांसाहार के त्यागी होते हैं, जैनों के २४ तीर्थंकर हुए वैसे ही बौद्धों की भी २४ अव-तार की मान्यता है साधु का वेष भी सरीखा है, मूर्ति की बैठक भी सरीखी है।

बौद्धों के महावंश नामक सूत्र में लिखा है कि गौतम बुद्ध की मृत्यु के बाद २३० वर्ष पाछे तीन पीठिका लिखी गई है, सं० १६१ में काश्मीर देश का राजा मेघवाहन बौद्ध धर्म पालता था और इसी समय चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ। स० ४२७ में चीन का राजा बौद्ध धर्मी बना था कोरिया में स० ४२६, में बौद्ध धर्म प्रचलित

हुआ स० ४८७ में बौध्दाचार्य बुध्द घोष ने धम्मपद की टीका लंका में की थी, स० ५८७ मे ब्रह्मदेश (बर्मा) मे, ६०६ मे जापान में, ६६५ मे शीआम में बौध्द धर्म चला था और स० १३१६ में सीनराम नाम के एक बुध्द साधु ने जापान में एक नवीन पथ चलाया था कि साधुओंको विवाह (लग्न) करना चाहिये यह मार्ग जापान में प्रचलित है, आज भी विद्यमान बताते हैं।

फिर एक बात इसी सूत्र मे मिलती है कि महावीर के एक मल्लीय और लछीय गोत्रीय उपासक को बुध्द ने अपने पंथ मे लिया था इस से भी साबित होता है कि महावीर और बुध्द दोनों अलग थे और जैन धर्म बुध्द के पहले भी अस्तित्व धराता था ।

ग्रन्थों तथा इतिहास के बल पर यह निर्णय तो हो चुका है कि जैन धर्म अनादिकाल से चला आया धर्म है, यह हम पहले ही ऊपर वर्णन कर चुके हैं यह विषय निर्विवाद तथा मतभेद रहित साबित हो गया है, यह सारा ससार जानता है कि शस्त्रवालों के शक चल रहे हैं, मुसलमानो का शक चलता है, ईसाईयोंका शक शालीवाहन का शक चालू है इसी प्रकार जैन धर्म में भगवान महावीर का शक चल रहा है। शक चलाने का प्रथा जैन लोगों ने ही प्रारभ की थी। वीर शक के पहले युधिष्ठिर शक चलता था ऐसा इतिहास कहता है।

जैन और बौध्द में बहुत कुछ बातें मिलती जुलती हैं, फिर भी ऐसा नहीं मानना चाहिये कि दोनों एक ही हैं। क्योंकि इसके मूल मे बडा भेद है, धार्मिक ग्रन्थ अलग हैं। इतिहास अलग और कथाएं अलग हैं। सिध्दान्तों के बारे मे आकाश पाताल का अतर है।

बौध्द कहता है कि—प्रत्येक पदार्थ क्षण क्षण में नष्ट होता है कोई भी वस्तु नित्य नहीं है, जिस प्रकार दीपक की लौके

प्रत्येक क्षणमें बदलते रहते हुए भी और पूर्व और उत्तर क्षणों में एकसा ज्ञान होने के कारण यह वही तो है, यह ज्ञान होता है, वैसे ही पदार्थों के प्रत्येक क्षण म बदलते रहने पर भी पदार्थों के पूर्व और उत्तर क्षणों मे एकसा ज्ञान होने से पदार्थ की एकता का ज्ञान होता है, पदार्थों के प्रत्येक क्षण नष्ट होते हुए भी परस्पर भिन्न क्षणों को जोड़न वाली शक्ति को वासना अथवा संतान कहते हैं। यह नाना क्षणों की परम्परा ही वासना है। इसी वासना को उत्तरोत्तर अनेक क्षण परम्परा के कार्य कारण सम्बन्ध स कर्ता भोक्ता आदि व्यवहार होता है, वास्तव मे कर्ता और भोक्ता कोई नित्य पदार्थ नहीं है, यह सिद्धान्त बौद्ध में सदा महत्व का माना गया है।

जैन कहता है—वासना और क्षण संतति परस्पर अभिन्न है भिन्न है अथवा अनुभय। यदि वासना और क्षण संतति अभिन्न है तो दो में से एक को मानना चाहिये, अगर वासना और क्षण संतति को भिन्न मानो तो दो में से कोई सम्बन्ध नहीं बन सकता। भिन्न और अभिन्न दोनों विकल्प स्वीकार न करके यदि वासना और क्षणसंतति भिन्न अभिन्न के अभाव रूप मानो तो अनेकान्त मत को छोड़ कर दूसरे वादियों क मत म भेद और अभेद से विलक्षण कोई तीसरा पक्ष नहीं बन सकता।

इसी प्रकार ज्ञान नीति कर्म और निर्वाण सम्बन्धी भी बहुत कुछ भेद रहा हुआ है जैन कहता है कि जीव को जिस पुद्गल ने घेर लिया है उसको विरती के द्वारा दूर करना पड़ता है और उनके बाद जीव अपने शुद्ध स्वरूप को धारण कर शाश्वतधाम म सदा निवास कर सकेगा और पुनरागमन स रहित हो जायगा।

बौद्ध की मान्यता है कि, अर्ह को क्लेशजनक क्षण स्थायी नाशवंत तत्त्व का ज्ञान पैदा हो गया तो फिर सब को फिर स बन्धन

हुआ म० ४८७ म बौध्दाचार्य बुध्द घाप ने धम्मपद की टीका लंका में की थी, म० ५०७ में ब्रह्मदेश (वर्मा) में, ६०६ मे जापान में, ६६५ मे शीआम मे बौध्द धर्म चला था और स० १३१६ मे सीनराम नाम के एक बुध्द साधु ने जापान मे एक नवीन पथ चलाया था कि साधु ओंको विवाह (लग्न) करना चाहिये, यह मार्ग जापान में प्रचलित है, आज भी विद्यमान बताते हैं।

फिर एक बात इसी सूत्र में मिलती है कि महावीर के एक मल्लीय और लच्छीय गोत्रीय उपासक को बुध्द ने अपने पंथ में लिया था इस से भी साबित होता है कि महावीर और बुध्द दोनों अलग थे और जैन धर्म बुध्द के पहले भी अस्तित्व धराता था।

ग्रन्थों तथा इतिहास के बल पर यह निर्णय तो हो चुका है कि जैन धर्म अनादिकाल से चला आया धर्म है, यह हम पहले ही ऊपर वर्णन कर चुके हैं यह विषय निर्विवाद तथा मतभेद रहित साबित हो गया है, यह सारा ससार जानता है कि शक्वालों के शक चल रहे हैं, मुसलमानों का शक चलता है, ईसाईयोंका शक शालीवाहन का शक चालू है इसी प्रकार जैन धर्म म भगवान महावीर का शक चल रहा है। शक चलाने की प्रथा जैन लोगों ने ही प्रारभ की थी। वीर शक के पहले युधिष्ठिर शक चलता था ऐसा इतिहास कहता है।

जैन और बौध्द में बहुत कुछ बातें मिलती झुलती हैं, फिर भी ऐसा नहा मानना चाहिये कि दोनों एक ही हैं। क्योंकि इसके मूल म बडा भेद है, धार्मिक ग्रन्थ अलग हैं। इतिहास अलग और कथाए अलग है। सिध्दान्तों के बारे म आकाश पाताल का अतर है।

बौध्द कहता है कि—प्रत्येक पदार्थ क्षण क्षण में नष्ट होता है कोई भी वस्तु नित्य नहीं है, जिस प्रकार दीपक की लौके

प्रत्येक क्षणमें बदलते रहते हुए भी लौके पूर्व और उत्तर क्षणों में एकसा ज्ञान होने के कारण यह वही लौ है, यह ज्ञान होता है, वैसे ही पदार्थों के प्रत्येक क्षण में बदलते रहने पर भी पदार्थों के पूर्व और उत्तर क्षणों मे एकसा ज्ञान होने से पदार्थ की एकता का ज्ञान होता है, पदार्थों के प्रत्येक क्षण नष्ट होते हुए भी परस्पर भिन्न क्षणों को जोड़ने वाली शक्ति को वासना अथवा सतान कहते हैं। यह नाना क्षणों की परम्परा ही वासना है। इसी वासना का उत्तरोत्तर अनेक क्षण परम्परा के कार्य कारण सम्बन्ध से कर्ता भोक्ता आदि व्यवहार होता है, वास्तव में कर्ता और भोक्ता कोई नित्य पदार्थ नहीं है, यह सिद्धान्त बौध्द में सदा महत्व का माना गया है।

जैन कहता है—वासना और क्षण सतति परस्पर अभिन्न है भिन्न है अथवा अनुभय। यदि वासना और क्षण सतति अभिन्न है तो दो में से एक को मानना चाहिये, अगर वासना और क्षण सतति को भिन्न मानो तो दो में से कोई सम्बन्ध नहीं बन सकता। भिन्न और अभिन्न दोनों विकल्प स्वीकार न करके यदि वासना और क्षणसतति भिन्न अभिन्न के अभाव रूप मानो तो अनेकान्त मत को छोड़ कर दूसरे वादियों के मत में भेद और अभेद से विलक्षण कोई तीसरा पक्ष नहीं बन सकता।

इसी प्रकार ज्ञान नीति कर्म और निर्वाण सम्बन्धी भी बहुत कुछ भेद रहा हुआ है जैन कहता है कि जीव को जिस पुद्‌गल ने घेर लिया है उसको विरती के द्वारा दूर करना पड़ता है और उसके बाद जीव अपने शुध्द स्वरूप को धारण कर शाश्वतधाम में सदा निवास कर सकेगा और पुनरागमन से रहित हो जायगा।

बौध्द की मान्यता है कि, अह का क्लेशजनक क्षण स्थायी नाशवंत तत्त्व का ज्ञान पैदा हो गया तो फिर संघ को फिर से वन्धन

मे नहीं आना पडता है। अर्थात् बौध्द जीव को एक स्कंध के रूप में मानते हैं। जीव का अस्तित्व नहीं मानते हैं।

ऐसा धर्म मे बड़ा मतभेद पाप के निर्णय का भी है, जैन तो कहता है बहार से भी जाव हिंसा की जाती है, अथवा अज्ञात अवस्था मे भी किसी प्रकार की हिंसा हो जाय यह भी पाप है जान बूझ करें उनका तो पूछना ही क्या ? तीव्र पाप !

बौध्द कहता है कि पाप का आधार मन पर हैं और खास जान बूझ कर हिंसा की जाय उस म पाप है अन्यथा नहीं। इतनी छूट देनेपर तो लाखो मानव मांसाहारी बनगये यह छूट देन वालों के माथे पर बोझा है ऐसा कहना पडेगा।

ब्राह्मण धर्म और जैन धर्म दोनो में लड़ाई की जड़ हिंसा थी वह अब नष्ट प्राय हो गई है, इस रीति से ब्राह्मण धर्म अथवा हिन्दु धर्म को जैन धर्म ने अहिंसा धर्म बनाया है, हिन्सा किसी जीव के मारने अथवा किसी का प्राण लेन का कहते हैं, संसार के लगभग सब धर्मों मे हिंसा का निषेध किया है बौध्द धर्म में भी निषेध है फिर भी चीन आदि देशवासी बौध्द में हिंसा का पारावार नहीं। हिन्दुस्तान से बौध्द धम का पहले विनाश होने का यही एक कारण था। बाईबल मे भी कहा है कि(DoNot kill)हिंसा मत करो, परन्तु इसका अर्थ ईसाई लोग इतना ही करते हैं कि खून मत करो। इसरीति से बाईबल की आज्ञा का निराला ही अर्थ किया है। हिन्द में जो लाखो पशुओं का वध होता है, उसके पाप का बोझा उल्टा अर्थ समझाने वालों के शिर पर ही मानना चाहिये।

ब्राह्मण और हिन्दु धर्म में मांसभक्षण और मदिरा पान का थोड़ा बहुत बंद हुआ यह भी जैन धर्म का प्रताप है, जैनों की अहिंसा

और दया की विशेष प्रीति से कईएक जनों के हृदय हिंसा के दुष्कृत्यों से दुखने लगे, और उन्होंने आवेश वश यहां तक स्पष्ट कह दिया कि जिस वेद में हिंसा है हम को वह वेद मान्य नहीं, जो वेद हिंसा करने की आज्ञा देता है वह वेद हमसे सर्वथा दूर रखे जाय। दया और अहिंसा की ऐसी ही स्तुत्य प्रीति ने जैन धर्म का जोरदार प्रचार किया, स्थिर रखा है और उसी से चिरकाल तक स्थिर रहेगा।

इस अहिंसा धर्म की छाप जब ब्राह्मण धर्म पर पडी और हिन्दुओं को अहिंसा पालन करने की आवश्यकता सूझी, महावीर स्वामी के द्वारा उपदिष्ट धर्मतत्व सर्वमान्य हो गया और जैन धर्म की विश्वव्यापिनी अहिंसा ब्राह्मण धर्म में भी मान्य हो गई।

जैन और बौद्ध धर्म की समाज रचना में भी बडा फर्क है, बौद्ध की समाज रचना में केवल भिक्षु संघ को ही मान्य रखा है, गृहस्थों के साथ बिल्कुल सम्बन्ध नहीं रखा जिसका यह नतीजा हुआ कि साधु संघ में शिथिलता ने प्रवेश किया और दूसरी ओर ब्राह्मणों का प्रचन्ड विरोध हुआ, उनके सामने टिक न सका, तब भारत से बौद्ध धर्म अदृश्य हो गया। भारत में पहले बौद्ध धर्मने विस्तार पाया तो राजा अशोक के बल पर। अगर अशोक राजा न होता तो बौद्ध धर्म भारत में पग भी न रख पाता और अभी तो पुनः सजीवन हो चारों ओर प्रचार कर रहा है अभी आम्बेडकर ने भी बौद्ध धर्म दो लाख मानवों के साथ स्वीकार किया है ऐसा दैनिक पत्रों में पढने को मिला था, चाहे कितना भी फैलावा करें मगर इनकी समाज रचना में बडा खामी है।

जैन समाज की रचना में चतुर्विध संघ लिया गया है जिसमें साधु और साध्वी श्रावक और श्राविका के अपने अपने

कर्त्तव्य बताये गये हैं एक दूसरे के साथ घनिष्ट सबन्ध होने के कारण आज दिन पर्यन्त अनेक आक्रमणों का सामना जैन सघ कर सका। ब्राह्मणों का तथा मुसलमानों के प्रचड विरोध का भी सामना प्रबल वेग के साथ किया था और आज दिन पर्यन्त ससार में सूर्य का भाति चमक रहा है तो केवल समाज की रचना के बल पर ही। यह अनुपम उदाहरण है।

जैन धर्म और बौध्द धर्म सर्वथा भिन्न भिन्न है। बौध्द धर्म शून्य को पकड बैठता है आत्मा का अस्तित्व भी नहीं मानता है, शून्य में मिल जाना ही निर्वाण है, दिशा, काल, परमाणु का अस्तित्व, धर्म (गति सहायक) भी नहीं मानता है, लेकिन जैन धर्म इन सब बाता को स्वीकार करता है और मुक्त जीव में भाव प्राण जरूर मानते हैं, इसलिये दोनों धर्म जुदे और उनके मार्ग भी जुदे हैं।

कोई यह भी कहता है कि गौतम बुध्द महावीर का शिष्य थे, परन्तु यह बात न्याय सगत नहा है, क्योंकि गौतम बुध्द क्षत्रिय थे और महावीर के शिष्य गौतम स्वामी ब्राह्मण थे, इस-लिये गौतम बुध्द और गौतम स्वामी दोनों अलग अलग व्यक्ति हैं। एक नहीं मानना चाहिये।

उपरोक्त सब प्रकार से विचार करते हुए यह निर्णय हो जाता है कि जैन धर्म और बौध्द धर्म एक दूसरे की न तो शाखा है और न एक ही। दोनों स्वतंत्र धर्म हैं और इनके आचारविचार भी भिन्न २ पाये जाते हैं।

एक बात को तो जरुर मानना होगा कि दोनों धर्माचार्यों ने जगत को अहिंसा का पाठ पढाया था और इन महापुरुषों के

द्वारा प्रतिपादित मार्ग पर चलना अपना कर्त्तव्य हो जाता है। इसी से अपना उद्धार है, अस्तु।

उपसंहार—

संसार में प्राणी मात्र सुख की इच्छा रखता है और उस को प्राप्त करने के लिये मानव सतत मेहनत करता है मगर सुख के बदले दुःख आता है, एक ही उनका कारण है कि मानव ने साधन रूप धर्म को नहीं अपनाया, यदि धर्म पर पूर्ण विश्वास रखता तो मानव को दुःख का सामना न करना पड़ता।

भारत में अनेक धर्म हैं और उनके अनेक मार्ग हैं मगर सीधा और सरल मार्ग अहिंसा है, इसी अहिंसा के बल पर लाखों मानव अमर बन गये और बनेंगे क्योंकि सब धर्मों का सार अहिंसा ही है।

भारत भी पराधीनता की जंजीर से इसी अहिंसा के द्वारा मुक्त हो पाया, अतः भारतीय प्रजा का प्रिय और पूर्ण कर्त्तव्य है कि अहिंसा का विशेष रूप में प्रचार करें। भारत में पशुवध होना यह भारतीय जनता के ऊपर बड़ा कलंक है इस कलंक को मिटाने लिये संगठन पूर्वक बुलंद आवाज की अधिकाधिक आवश्यकता है और इस कलंक को धोकर ही दम लेना चाहिये।

भारतीय दर्शनों में जैन दर्शन बड़ा सूक्ष्म और गहन है क्योंकि जैन धर्म की नींव अनेकान्त पर खड़ी हुई है जैन दर्शन एक विशाल सागर अथवा विशाल बगीचा रूप है इतर दर्शन नदी और कुसुम की भांति है जो एकान्त की पुष्टि करते हैं। जैन दर्शन स्याद्वाद की ... सब में मिल जाता है।

जैन दर्शन में आत्म कल्याण के लिये दान शील तप भाव परोपकार सेवा इत्यादि अनेक मार्ग बताये हैं और जैन समाज जैसा तप और त्याग किसी भी सम्प्रदाय मे उपलब्ध नहीं हो सकता, जैन की तपश्चर्या ने तो सारे ससार को मुग्ध कर दिया है यह एक ध्रुव सत्य बात है।

मानव मात्र का अतिम ध्येय मोक्ष है, उसकी प्राप्ति का साधन धर्म माना गया है, और धर्म रूपी साधन के बल पर मानव एक दिन अवश्य साध्य को प्राप्त कर सकेगा अत. मानव को चाहिये कि कल्याण कारी उस धर्म का सहारा लेवे, जिस में अपना कल्याण निहित है। जय धर्म!

मुमुक्षु भव्यानन्द विजय

व्या० साहित्य रत्न,

दो बातें

(१) भारत से रसिया अथवा अमेरिका सैंकड़ा माईल दूर होने पर भी जिस समय अमेरिका में भाषण होता है उसी समय यानि उसी मिनट यहां सुनाई देता है यानि १ मिनट में सैंकड़ा माईल पर आवाज पहुँच जाती है तो एक माईल पर कितना समय गया ? यह कोई बता सकता है ?

इसी तरह जैनों की यह मुख्य मान्यता है कि आंख के एक पलकारे में असंख्याता समय निकल जाता है यह सूक्ष्म में सूक्ष्म जैनों का काल है।

(२) वैज्ञानिकों ने पानी के एक बिन्दु में ३६६७० जीव चलते फिरते प्रत्यक्ष देख लिये बताते हैं, जैनों के सर्वज्ञ देवों ने पानी के एक टीपे में असंख्याता जीव बताया है तो यह अवश्यमेव सत्य है।

"भव्यानन्द"